मेहरुन्निसा परवेज़

एक और सैलाब

मां शहजादी बेगम की स्मृति को
जिन्होंने हर बार बड़े होने की प्रेरणा दी !

कबूतर

सम्बन्धों को
मैंने कबूतर की तरह पाला था।
क्योंकि,
कहते हैं, कबूतर अपना घर, पता नहीं भूलते,
पर मेरे सारे कबूतर उड़ गये।
लौटकर नहीं आये।
मैं उनकी प्रतीक्षा करती रही,
ख़ाली घोंसलों को हसरत से देखती रही
कि
कभी तो वे लौटेंगे!
पर वे कभी नहीं लौटे!

मेरी बात

मेरे साहित्य के अन्दर एक चिडिया बहुत बार आती है, तो यह चिड़िया बाहर की नही, मेरे भीतर की है, जिसे मैंने सन्दर्भ के रूप मे लिया है। एक चिड़िया जिसने आपके घर मे घोसला बना लिया है, आपको रोज परेशान करती है। चीं-चीं कर आपको उत्तेजित करती है, आप बेचैन हो जाते है और आप उसका घोंसला घूरे पर फेंक देते हैं। दूसरे दिन आप देखते हैं चिड़िया नये सिरे से तिनके बीनकर घोसला बनाने लगती है।

यह कितनी बडी शक्ति है इसके भीतर! जीवन के प्रति कितना बड़ा लालच, कितना बडा मोह है! आप रोज देखते होंगे कि मनुष्य की एक झोपडी उजड जाती है तो वह कितना विलाप करता है, दफ्तरों के चक्कर काटता है, पर चिड़िया कुछ नही करती, एक शब्द नही और घोसला बुनने लगती है। मैंने हमेशा इस चिड़िया से प्रेरणा ली, बार-बार टूटकर फिर खडे होने की शिद्दत मे कोशिश की। यही आत्मबल मैंने अपने पात्रो को देना चाहा।

मेहरुन्निसा परवेज

क्रम

एक और सैलाब

एक और सैलाब

बड़े शहरों के भीड़ से भरे सैलाब में अपना जाना-पहचाना चेहरा खोज पाना मुश्किल होता है, यह लगातार चार महीने गुजारने के बाद उसने जाना। जोर-जोर से पहाड़े रटने वाले बच्चे की तरह बौखलायी-सी ज़िन्दगी। स्कूटरों की तेज रफ़्तार में चेहरा देख पाना ही मुश्किल होता है, तो पहचानना तो बहुत दूर की बात रही।

उस दिन इसी भीड़ के उमड़ते सैलाब में जब वह बस से नीचे उतरा और सूट साफ करने नीचे झुका था कि सामने चप्पलों में फंसे दो नारी पैर आ ठिठके।

"ओह ! बस तो चली गई।" एक निराशा से भरा वाक्य।

उसने सिर उठाकर उस हताश हुए चेहरे को देखा तो चौंक पड़ा।

"अरे, नीलू ?"

वह भी पल-भर चकराई-सी देखने लगी। काले शाल में लिपटी, हाथ मे टिफिन का डिब्बा पकड़े थी। उसके चेहरे पर वर्षों के उतार-चढ़ाव साफ-साफ अंकित थे।

"नीलू, तुम...यहां ?"

"मेरे पति यहां मेडिकल में भरती हैं, उन्हीं के लिए रोज खाना ले जाती हू। आज बस छूट गई, वह भूखे होंगे।" उसकी आंखो मे मौन पीड़ा तैर गई। छोटे-छोटे वाक्यों में जैसे जीवन का सारा ब्यौरा।

उसने महसूस किया, नीलू अन्दर से बहुत पीड़ित है। वे दोनो जहा खड़े थे वहां से भीड टुकड़े-टुकडे हो गई थी, वे दो ही वहां खडे रह गए थे। दूसरी बस के आने मे समय था। दोनो वहा से हटकर पेड़ की छाया मे आ गये।

"तुम्हारे पति को क्या बीमारी है ?"

"उन्हें चार-पाच बीमारियों ने आ घेरा, उमेश। सात-आठ मील दूर मेडिकल मे पड़े है। मैं अकेली तीन बच्चो की देख-भाल और अस्पताल की भाग-दौड़ कर रही हूं।" सामने से सब्जी से भरा ठेला गुजर गया। उसके गुजरते ही दोनों की दृष्टि नाली के पास पड़ी कुतिया पर पड़ी जिसने शायद नये बच्चे को जन्म दिया था और खुद प्रसूति बीमारी में फंस गई थी। उसके मुह मे कडवा-सा स्वाद उतर आया। उसने उधर से दृष्टि फेरकर गागल्स लगा ली। हवा का तेज झोका आया और इमली के ढेर सारे फूल दोनो पर झाड़ गया। उसने नीलू को कुरेदना नही चाहा।

भाग-दौड मे डिब्बे में रखी दाल बाहर तक बह आयी थी। नीलू की दृष्टि बार-बार उस डिब्बे पर पड रही थी, पर पास मे कोई खराब कपडा न होने के कारण विवश-सी बैठी थी।

"तुम एक बार मेरे पति को देखने नही आओगे ?" एक टूटा हुआ वाक्य उसे चौंका गया।

"क्यों नही ! तुम अपना पता बता दो, फिर किसी दिन साथ देखने चलेंगे।"

"अभी साथ चलो न, किसी दिन तक तो शायद वह जिन्दा भी न रहे।"

दोनों चुप हो गए। दोनों ही एक साथ बस के आने की प्रतीक्षा कर रहे थे। दोपहर का एक बज रहा था। पर सड़क पर भीड़ वैसी ही बनी थी। बस के रुकने की जगह पर कुछ लोग आ खड़े हुए थे। बच्चे बस्ते पकड़े यूनिफॉर्म मे खड़े बस की प्रतीक्षा कर रहे थे।

"बच्चे लौट आये होंगे, घर बन्द है।" फिर वही छटपटाहट।

"बच्चों ने खाना खा लिया है क्या ?"

"नही, भूखे होंगे। वैसे मेरी पड़ोसिन बहुत अच्छी है, कभी-कभी जब मुझे लौटने में देर हो जाती है तो बच्चों को खिला देती है।"

सामने से बस आती दिखी। दोनों उठ गए और बस की ओर बढे। बस, दोनो पायरी पर खड़े हो गये।

मेडिकल कॉलिज के अहाते में बस रुकी। नीलू जल्दी से उतरी, जैसे वह बहुत जल्दी पहुंचना चाहती हो। उसके चेहरे पर परेशानी की रेखा स्पष्ट दिख रही थी।

एक मंजिल...दो...तीन...चार...पांचवी मंजिल पर उसका पति था। चारों तरफ गहरी खामोशी, बस खामोशी। नर्सों के कलफ-लगे सफेद स्कर्ट फड़फड़ाते हुए बरामदे मे दिख जाते।

सीढ़िया चढ़ते-चढ़ते नीलू थक गई थी।

"यहां लिफ्ट होनी चाहिए थी।"

"हा ! लग रही है।"

दोनों लम्बे बरामदे को पार कर एक लम्बे वार्ड मे पहुंचे। लोहे के पलगों की लम्बी कतार मे सातवे नम्बर पर उसका पति था। शायद वह सो गया था, या वैसे ही पडा था। नीलू जल्दी से टिफिन खोलकर प्लेट मे खाना निकालने लगी। उसका पति जाग गया और दोनो की तरफ देखने लगा। नीलू निवाला बनाकर उसके मुह मे देने लगी। वह बहुत मुश्किल से निगल पा रहा था। उसके पति की दोनों आंखें लकवे के असर से सूज गई थी। मुश्किल से वह आधी प्लेट खाना खा पाया। हाथ धोकर नीलू उसके पास स्टूल खीचकर बैठ गई और उसे देर तक देखती रही, उसके हाथ को सहलाती रही, मानो वह उसे धीरज बंधा रही हो, पर लग रहा था वह मुश्किल से अपने को संभाल पा रही है। जाने उसका पति उसे इशारे से क्या-क्या बता रहा था। अचानक उसके पलंग की पाटी से टिककर नीलू रो पड़ी।

नीलू की अवस्था इतनी तकलीफदेह होगी, वह कल्पना भी न कर

सकता था। नीलू रोते-रोते ही उठी और पलंग के नीचे से पेटी खींचकर धुली हुई कमीज निकाली और उसकी सहायता से पति को पहनाने लगी। उतरे हुए मैले कपड़े उसने बाध लिये और टिफिन लेकर पति को इशारे से समझाकर वह बाहर निकल आयी। वह भी उसके पीछे लौट पड़ा।

दोनों चुप थे। नीलू उसके आगे चल रही थी और शायद रो भी रही थी, क्योंकि बार-बार उसका आंचल आंख पर जाता था। दोनो उतनी ही सीढ़ियां उतरकर नीचे आये। बरामदे में एक भिखमंगा बैठा सूखी रोटी के टुकड़े चबा रहा था, उसकी दोनों आंखें भूख से बाहर निकल पड़ने को हो रही थी। दोनो उसके आगे से बढ़ गये। उसे अपनी पीठ पर उसकी आखें गड़ती-सी लग रही थी।

दोनों जब बस के पास आये तो बस छूटने ही वाली थी। इस बार दोनों को बैठने की सीट मिल गई।

"मा के मरने के बाद मायका तो टूट ही चुका था। पति का सहारा था। वह भी रेत पर बनी गीली लकीर के समान है, किसी ने पैर रख दिया, मिट गई। भगवान ने मुह दिया है, तो खाने को भी देगा ही। कुछ नही करते बनेगा तो शरीर तो बेच ही सकती हूं। मरने के बाद भी तो शरीर नष्ट हो ही जाता है।" नीलू कह रही थी।

उससे उत्तर देते नही बना। तभी गोरखपुर आ गया। दोनो भीड से उठते वाक्यो को रौंदते हुए नीचे उतर गये।

बस से नीचे उतरने पर जाने क्यों उसके मन में आया, नीलू के साथ उसके घर चला जाये।

नीलू विदा लेने के लिए मुड़ी, "अच्छा उमेश, कभी आना, यहीं गोरखपुर मे ८६/३ पर रहती हूं।"

"ठहरो, नीलू, मैं भी तुम्हारे साथ चलूगा।"

वह कुछ नहीं बोली। दोनो चलने लगे। एक संकरे-से मोड़ पर नीलू रुक गई। कुछ सोचती-सी बोली, "यह गली गन्दी है पर यहां से पास

पड़ेगा।" जैसे वह अपने से प्रश्न का उत्तर दे रही हो। बिना उसकी राय लिये वह आगे बढ गई।

लकडी के बने लैम्पपोस्ट के आगे से गली मुड़ गई थी। कच्चे मांस की महक चारों तरफ फैली थी। गली के दोनों तरफ बने छोटे-छोटे कच्चे मकानों के सामने ताजा मांस लटक रहे थे, जिन पर सैंकड़ों मक्खियां भिनभिना रही थी। हरेक मकान के सामने ढेर सूअर बैठे सुस्ता रहे थे।

"यह क्या सूअर-मार्केट है ?"

"हां।"

एक औरत मकान के बाहर झांकी, "बाबू, कुछ चाहिए तो ले जाओ, माल ताजा मिलेगा।"

दोनों बिना उत्तर दिये आगे बढ़ गये। आगे मकान की कच्ची दीवार से टिके दो बच्चे पके हुए मांस के टुकड़े के लिए लड़ रहे थे।

आगे गली ईसाई मोहल्ले की सड़क पर खत्म हो गई थी। दो-चार मकान के बाद वाले एक घर के सामने स्कूल की यूनिफॉर्म में तीन बच्चे चुपचाप बैठे भूखी आंखों से सड़क की दोनों ओर देख रहे थे।

उसे समझते देर नहीं लगी कि यही नीलू के बच्चे हैं। नीलू जल्दी से सीढ़ियां चढकर दरवाजा खोलने लगी। सीढ़ियां चढ़ते उसने देखा, नीचे वाले घर पर ताला लटक रहा है—यानी पड़ोसिन कहीं चली गई थी।

एक पत्रिका उसके आगे रखती नीलू बोली, "बैठो उमेश, बच्चों को खाना दे आऊं।"

अन्दर पटरे बिछाने की आहट हुई। वह पत्रिका के पन्ने उलटने लगा।

"मम्मी, मुझे दाल नहीं चाहिए, सब्जी दो न।"

"चुप !"

"नहीं, मैं नहीं खाऊंगा, पापा को आने दो, मैं सब बताऊंगा।"

"खा ले, बबलू, पापा बीमार है, अच्छे होने पर अच्छी-अच्छी चीजें लायेंगे।"

फिर सब शान्त हो गया। उसने पत्रिका टेबल पर रख दी। थोड़ी देर में नीलू आयी। उसका चेहरा बहुत बुझा-बुझा-सा था।

"तुम तो कह रही थी, नीलू, पडोसिन बच्चों को खिला देती है?"

उसने भयभीत नजरों से उसे देखा, "उमेश, कोई कब तक एहसान करेगा? पहली बार किया उपकार होता है, दूसरी बार का एहसान होता है और तीसरी बार उपेक्षा होती है। फिर वह सोचती होगी मैं अस्पताल मे जान-बूझकर देर कर देती हूं।"

उसे नीलू की हालत देखकर आश्चर्य हो रहा था।

"अस्पताल की मौत कितनी बुरी होती है उमेश, आखिरी समय आदमी को घर का सुख भी नही मिलता।" नीलू अपने आपको बुरी बातें सोच-सोचकर कठोर बना लेना चाहती थी शायद।

तभी छोटी मुन्नी खाना खाकर लौट आयी। उसे पास बुलाया, "तुम्हारा नाम क्या है?"

"रेशमा।" उसने सिगरेट-केस से खेलते हुए कहा।

"नाम तो बहुत प्यारा है, पापा को देखने जाती हो?"

"हां, जाते हैं न।" बच्ची ने सीधा उसकी आखों में देखते हुए कहा, "इतवार को बाल-मन्दिर बन्द रहता है, तो मम्मी ले जाती है।"

"पापा से क्या बात करती हो?"

"क्या बातें करें, पापा तो बोल नही सकते, चुपचाप देखते है। उनकी आखो से पानी बहता है।"

"अच्छा, पानी बहता है या रोते हैं?"

"हट, पापा लोग रोते थोड़े हैं! मम्मी कहती है—आंख से पानी बहता है।"

तभी पर्दा हटाकर बडी लड़की हाथ मे तश्तरी और गिलास उठाये आयी। प्लेट की चीजें बाजार से मंगायी लग रही थी।

"खाओ, उमेश!" नीलू ने अपना जूड़ा ढीला करके बाल पीठ पर फैला दिये। बाल गीले थे, जल्दी मे शायद वह गीले बाल बांधकर ही चली गई

थी। तीनों बच्चे कमरे में आ गये थे और उसे देख रहे थे।

उसने बर्फी का आधा टुकड़ा उठाकर मुन्ना को खिला दिया।

"यह क्या?" नीलू ने शिकायत मे कहा, फिर जाने क्योंचुप हो गई। बच्चे नीचे सीढ़ियां उतर गये थे। नीचे ताला खोलने की आहट हुई।

"नीलू, इतनी घुटन में कैसे जी लेती हो?"

"तुम एक ऐसी पत्नी के बारे मे कल्पना कर सकते हो जो पति की मौत के पहले ही उदासी मे जी रही हो!" उससे कुछ बोलते नहीं बना।

"तुमने शायद खाना नहीं खाया। मैं चलता हूं।"

"नहीं-नहीं, बैठो, मैं बाद में खा लूगी।"

"नही, फिर तुम्हें शाम का इन्तजाम करके अस्पताल भी तो जाना है।"

दोनो उठ गये। दोनो सीढ़ियां उतरने लगे। पड़ोसिन ने खिड़की से झाका और अजीब शंकालु दृष्टि से देखने लगी। उसे सकोच-सा लगा।

"तो चलू?" उसने जल्दी से खिसक जाना चाहा।

"चलो, मोड तक तुम्हे छोड़ आऊं।"

दोनों सडक के किनारे चलने लगे। सडक के किनारे पिंजरों मे बन्द भाग्य बताने वाली चिडिया लिये कुछ लोग बैठे थे। सामने एक फटे कपडे पर कुछ लिफाफे छपे हुए रखे थे। कोई भी ग्राहक आता तो वह चिडिया को बाहर निकालता, चिड़िया चोंच से लिफाफा उठाती, फिर वह उसे पिंजरे मे बन्द कर देता। कागज पढकर वह ग्राहक को भविष्य सुनाता और पैसे जेब मे रख लेता।

दोनो उसके सामने से होते हुए आगे बढ़ गये। मोड़ पर नीलू रुक गई, "उमेश, मन में किसी प्रकार का विचार न करना, दु.ख सब सहने के लिए आदमी को कठोर बना देता है। फिर यदि पति अकस्मात् मर जाते तो क्या कर लेती? पल-पल कर मौत इसलिए पास आ रही है ताकि मैं कठोर हो जाऊ और बाद की स्थिति को बरदाश्त कर सकू।"

उसने नीलू की आखों मे छटपटाती पीड़ा को साफ-साफ देखा। जाने किसके शाप का दुःख भोग रही थी।

कई दिनों तक नीलू के घर दुबारा नहीं जा पाया था : र हमेशा उसकी पीड़ा से छटपटाती आंखें उसे अपने सामने लगती।

एक शाम सदर बाज़ार से वह आ रहा था तो दूर से उसने नीलू को गहने वाले दुकान की सीढ़िया उतरते देखा। भीड़ इतनी थी कि चाहकर भी वह उसके पास नही जा पाया। मन मे कई प्रश्न उठे—गहने वाले की दुकान पर नीलू ? क्या कोई गहना बेचने आयी थी ?

दूसरे दिन सुबह उसके घर के सामने वह रुका तो सीढ़ियो पर मुन्नी बैठी मिली।

"मम्मी नहीं है, पापा मर गये।"

वह चौक पड़ा। बच्ची के शब्दों मे इतनी जड़ता ! उसने बच्ची को पुचकारा, "बेटा, मम्मी कहां है ?"

"अस्पताल गयी है।"

वह मेडिकल की ओर बढ़ा। नीचे लम्बे बरामदे मे वह चुपचाप खड़ी थी। वह पास गया। उसे देखा। वह पीड़ा से भर उठी।

"तुम्हे मालूम हुआ, परसों...?"

"हा," उसने बात को बीच मे ही तोड़ दिया। तभी एक चपरासी नीलू को बुलाने आया।

"तुम चलो, उमेश, मुझे यहा बहुत समय लगेगा।"

"तुमने मुझे खबर की होती, नीलू, मैं उस दिन तुम्हारे पास पता छोड़ गया था।" उसने अपने को निकट बताने के लिए संवेदना प्रकट की।

नीलू चुप रही, वह देर तक अपनी सूनी कलाइयों पर आंचल लपेटती खड़ी रही। जहा दोनो खड़े थे, वहा मेडिकल कॉलेज का आफिस था। आफिस के बायीं ओर वाले बरामदे में स्कूटरों की लम्बी कतार थी। लोगों की एक लम्बी भीड़ आ-जा रही थी।

अन्दर दुबारा घंटी बजी, चपरासी ने फिर अन्दर चलने को कहा।

नीलू ने उसे देखा। वह भी चुपचाप-सा उसे देखने लगा। उसे लगा, नीलू अन्दर ही अन्दर अपने से लड़ रही है, उसकी आखों मे व्याकुलता साफ

छटपटाती लगी।

"उमेश..." सहसा वह चुप हो गई और उसके पास आ गई, "मैंने ही उन्हें नींद की गोलियां ज्यादा दे दी थी। मैं बहुत मजबूर हो गई थी, उमेश। भाग-दौड़ करते-करते मैं थक गई थी। बस, इसके आगे प्रश्न न करना।" वह बहुत धीरे बोल रही थी कि दूसरा न सुन सके।

बिना एक-दूसरे की तरफ देखे दोनों विदा हो गये। सड़क पर वही भीड़ का सैलाब उमड़ आया था। अपने आस-पास इतनी भीड़ देखकर उसे अच्छा लगा। मन में आया—अच्छा हुआ, नीलू इस भीड़ में खो गई।

सिर्फ एक आदमी

संकरी गली मे बन रहे उस अधबने बंगले के दरवाजे पर रुकते ही छज्जे से बीना ने झाका, "अतुल दा ?"

'धम-धम'—किसी के सीढ़ियां उतरने की आवाज आयी। आवाज़ रुकते ही दरवाज़ा खुला। मैंले गुलाबी किशोर चेहरे पर हल्का-सा उल्लास घिर आया।

बीना के पीछे जाते उसे महसूस हो रहा था, बाहर के बंगले को देख जैसा उसने सोचा था, वैसा नही। अन्दर अजीब-सी घुटन हो रही थी। लम्बे अधेरे गलियारे से जाते हुए लग रहा था, किसी भुतहा बंगले में जा रहे है। लाइन से खोलिया बनी थी, जिनमे किरायेदार रह रहे थे।

"क्या सारा मकान किराये पर उठा दिया ?"

चलते-चलते तीसरी सीढ़ी पर बीना रुक गई। ठडी सास खीचकर बोली, "और क्या, बप्पा जितना न करें कम है।"

बीना के चेहरे पर से क्षणभर पहले की मुसकान गायब हो गई थी। उसकी जगह खीझ ने ले ली थी।

"आ गया रे ?" साड़ी निचोड़ती मौसी बोली।

"ऐसा ही लगता है।"

"शैतान कही का !"

अटैची को अलमारी पर रखते ही उसने चारों तरफ देखा और धीरे

से वीना ने पूछा—'मुमी कहां है ?'

"दीदी ? वहां।" उसने ऊपर वाले दाहिने कमरे की तरफ इशारा कर दिया। वह देर तक उस कमरे की तरफ देखता रहा।

"मौसा को नमस्ते कर आऊं।" उसने ऊपर चढते कहा। मौसी ने कोई उत्तर नही दिया, बस दु.ख से भीगी आंखो से उसे निहारा। सीढ़िया चढ़ते वह तीसरी मंजिल की छत पर पहुंच गया जहा वह खुद अपने हाथो सीमेंट मिला रहे थे। वह देर तक उनको नगे पैर, फटी फुलपैंट पहने काम करते देखता रहा। उनके पैर एड़ियो तक सीमेंट मे सन-से गये थे, सिर पर धूल ही धूल थी। अचानक वह मुडे—'अरे, अतुल ! खैर, अच्छा हुआ तू आ गया। देखना जरा, यह दीवार कही तिरछी तो नही हुई ! घर मे तो साले सब नमकहराम हैं।"

"मगर मौसाजी, आप और यह सब···?"

"क्यों, आश्चर्य हो रहा है ? सारी उम्र डिप्टी कलेक्टरी करने के बाद आदमी यह नही कर सकता ? बस, यही तो बुराई है आज के पढ़े-लिखों मे !" कहते हुए वह दुबारा दीवार पर प्लास्टर करने लगे। प्लास्टर वह उल्टे हाथ से कर रहे थे।

-"आपके सीधे हाथ मे···?"

"अरे, कुछ नही, यूं ही, खून का दौरा नही होता। डॉक्टर कहता है, फालिज का असर है, पर वह साला क्या बोलेगा, सब झूठ है।"

उसे लगा, वह ज्यादा देर खड़ा नही रह पायेगा। थोडी देर तक वह काम करते रहे, फिर नल के नीचे हाथ धोकर खाट पर बैठ गये। थोड़ी देर तक थके-से आंखें बन्द किये रहे। आंखें खोली, "बैठ, अतुल, बड़े दिन में आया है, बातें करेंगे। पर ठहर, चाय पी ली जाये, क्यो ?" जवाब का बिना इन्तजार किये वह उठे और कॉलबेल दबा दी। साथ ही छत से रस्सी में लटकी टोकनी को नीचे लटका दिया। थोड़ी देर में नीचे से रस्सी हिली और उन्होने उसे ऊपर खीचकर टोकनी से केतली उठा ली।

प्यालों में चाय डालते हुए बोले, "बेटा, वकालत बुरा पेशा है, पर क्या करू, पेट के लिए करना पड़ता है। इतनी बडी गृहस्थी है। अब देखो न, नसीब की बात, जब हम एस० डी० ओ० थे तो नायब तहसीलदार साले कांपते थे, अब अकडते हैं। केस खारिज कर देते है, फिजूल परेशान करते है। इन्हीं बातों पर तो मुझे दुःख होता है।" उन्होंने दोनों हथेलियों को आपस मे रगड़ा।

"पर आप तो हाईकोर्ट मे वकालत करते थे न?"

"अरे. छोड वे बातें, कौन हाईकोर्ट में मिल जाता है। हाईकोर्ट तक पहुंचने वाला आदमी चूसे गन्ने की तरह हो जाता है। भला उससे क्या मिलना है। फिर छोटी अदालत के केस आ जाते हैं तो वापस भेजने का मन नही होता।"

"आप नीचे नही चलेंगे?"

"अरे, नीचे क्या रखा है, सिवा बकरियों के राज के। मैं नीचे नही जाऊंगा।"

वह कुछ बोलने ही जा रहा था, सहसा देखा कि मौसाजी ने पुनः आखे बन्द कर ली है, मानो उसे चले जाने का संकेत हो।

सीढी से नीचे उतरते ही कुएं के पास रस्सी पर से कपडे समेटती सुमी दिख गई। पल भर उसे आश्चर्य हुआ। दो साल पहले देखी सुमी में और इस सुमी मे कितना अन्तर हो गया है?

"तुम्हे मालूम नही कि मैं आया हू?"

"मालूम था।"

"मिलने क्यो नही आयी?"

"बस यू ही।" उसने देखा सूखे कपड़ों के ढेर मे सुमी ने अपनी गीली आखें छिपा ली थी। सुमी कपड़ो को संभाले अन्दर चली गई। सुमी ने बंगाली ढंग की साडी बांध रखी थी। सुमी बंगाली होते हुए भी कभी इस प्रकार की साड़ी नही बांधती थी—आंचल पीछे मे कमर को घेरता हुआ आकर सामने बायी तरफ खुला था। उसके बाल. पीठ पर खुले

हुए थे। नहाकर आयी थी ऐसा नहीं लगता था, शायद सिर में तेल डाला हो।

वह कुएं के पास खड़ा आश्चर्य से मकान की नाप-तौल करने लगा। उसे मौसाजी के दिमाग पर वाकई आश्चर्य हो रहा था। पच्चीस बाई पचास के प्लॉट पर करीब पन्द्रह फैमिली जी रही थी। मकान देख लगता है जैसे उन्होंने हवा निकलने की भी जगह नही छोड़ी, जैसे बरसाती पुलिया के नीचे ढेरो सुअर भरे हों।

रसोई के छोटे-से कमरे में ही आधे घर का सामान भरा था। एक खिड़की को ड्रेसिंग रूम बनाया गया था, दूसरी मे लॉ के कोर्स की पुस्तकें जमी थी, तीसरी में मौसीजी ने पूजा का सामान सजा रखा था।

"मौसी, आखिरी मौसाजी को हुआ क्या, सारे मकान को किराये पर उठा दिया?"

"अतुल दा, बप्पा का बस चले तो हमारे कपड़े-गहने भी किराये पर उठा दें!" मंजू ने हाथ की लेख को पटे पर रख दिया।

"तुम्हारे मौसाजी को मालूम नहीं काहे की हाय-हाय लगी है। जितनी हाय-हाय करते है, उतनी फिक्र दूर नहीं करते। अब देखो पाच-पाच लड़कियां बैठी है पर उन्हें चिन्ता नही। चार को लॉ पढ़ा रहे हैं, दो तो इस साल निकल जाएंगी। अब उनसे कोई पूछे, लॉ पास करवाकर लड़कियों का क्या करना है? सुमी के लिए कितने रिश्ते है, पर कोई उन्हें पसन्द नही आता।" भजिए की तश्तरी उसकी तरफ खिसकाकर मौसी बोली, "लो, खाओ।"

"मौसाजी नहीं खाएगे?"

"अरे बेटा, उन तक पहुचने की इन लड़कियो में हिम्मत नही, बस कोई बात ढूढकर मार देते है। मैं ही फुर्सत पाकर दे आऊंगी। अपने सामने जवान लडकियो को मार खाते हुए नहीं देखा जाता।"

"अतुल दा, कटहल का अचार लोगे?"

शाम के झुटपुटे मे मौसी का चेहरा और धुधला दिखता है। पेटी पर

लेटी-सी वीना मुस्लिम लॉ की बुक पढ़ रही है। खिड़की से दिखते छोटे आकाश के टुकड़े पर दो-तीन पतंगें उड़ती दिखती हैं। सीढ़ियों पर किसी के चलने से धम-धम की आवाज आ रही है। दरवाजे की सांकल में पुरानी राखियां बंधी हैं। सामने के दरवाजे की दराज से दो आंखें झांकती-सी लगती हैं। फिर जाती हुई सुमी का आंचल दिख जाता है। नीचे से किरायेदारों के बच्चों का शोर ऊपर तक आता है। वीना गुस्से में पुस्तक बन्द कर लेती है, पर फिर कानों में अंगुली डालकर पढ़ने लगती है।

"भगवान जाने सुमी के बप्पा कैसे हो गये हैं, पहले अपने बच्चों के रोने पर मुझे रात को दरवाजे के बाहर कर देते थे।" वह कोई उत्तर नहीं देता, बस दीवार की खूंटी पर लटकी हुई चूड़ियों को देखता रहता है।

"मां, बाजार से कुछ लाना है?"

"हां, एक साग बनाना अच्छा नहीं लगेगा, कुछ और ले आ, अतुल बरसों बाद आया है।"

पेटी से पर्स निकाल सुमी दरवाजे की तरफ बढ़ती है।

"सुमी, मैं चलूं?" सुमी उत्तर नहीं देती, बस जाते-जाते दरवाजे से पलटकर देखती है। वह भी उसके पीछे सीढ़ियां उतरने लगता है। आगे चलती सुमी खुद से साथ हो लेती है। पर मौन रहकर, हाव-भाव कहीं से भी कुछ प्रकट नहीं करती।

"सुमी, इतनी निष्ठुर मत हो। मैं दो साल बाद लौटा हूं।"

वह कोई उत्तर नहीं देती। सड़क के किनारे, सुमी दुकानों को सरसरी नजर से देखती चलती है। वह एक बार स्वतंत्र होकर सुमी को देख लेना चाहता है। पर सुमी के जूड़े के पास का थोड़ा-सा भाग दीखता है क्योंकि वह सिर झुकाए हुए थी। अचानक उसने महसूस किया, दोनों के कदम बराबर पड़ रहे हैं।

लौटते में खुद से सुमी ने प्रस्ताव रखा, "चलो, थोड़ा पार्क में बैठ जाएं।"

लॉन पर बैठी सुमी उसे बहुत भली लगी। सुमी के चेहरे से वह घुटा-घुटापन साफ हो गया था। सुमी देर तक चुप बैठी सामने आने-जाने वालों को देखती रही, फिर अचानक उसकी तरफ देखती बोली, "अतुल, तुम नही समझ सकोगे कि हम कितनी परेशानियों मे जी रहे हैं। नर्मदा के किनारे वाली ड्रामर रोड पर तेजी से जीप चलाने वाली सुमी को भूल जाओ। अब तो मैं हर सुबह जब उठती हू तो डर लगता है कि कहीं मा ने आत्म-हत्या न कर ली हो। जाने क्यों, बप्पा ऐसे हो गए है। सारे घर मे उनका आतंक छाया रहता है। और अतुल, तुम कल्पना भी नही कर सकते कि वे कितने भद्दे ढंग से चीख-चीखकर गालियां देते हैं।"

वह समझ गया, सुमी बाजार में दुबारा उठाई गई शादी वाली बात का उत्तर दे रही थी।

"पिछले इलेक्शन मे वह एम० पी० के लिए खड़े हुए। किसी से मदद नही मांगी, अकेले सब करते रहे। महीनों साइकिल पर देहातों का दौरा करते रहे। तुम्हे सुनकर आश्चर्य होगा, बप्पा पूरे तीन माह सिर्फ भजिये-बड़े खाते रहे। सड़कों पर चिल्ला-चिल्लाकर अपनी ही पब्लिसिटी करते रहे। लोग उन्हें पागल समझते थे। इलेक्शन मे हारने का उन्हें इतना दुःख हुआ कि वह सब भूल गए हैं। डॉक्टर ने सीधे हाथ पर लकवे का असर बताया है, पर वह समझते नही। बस सारा दिन मकान बनाने मे जुटे रहते हैं। छोटी-छोटी अदालतों के केस लेते है। कोई अपमान कर देता है तो सारी रात बडबड़ाते है—मैं डिप्टी कलेक्टर था'''मैं एस० डी० ओ० था, उसकी इतनी हिम्मत ! कहते-कहते सुमी की आंखें भर आयी। "अतुल समझ में नहीं आताः, क्या करूं? जीवन इतना नीरस हो गया है कि लगता है एक घर में रहने वाले, एक परिवार कहलाने वाले हम लोगों की अलग-अलग दिशाएं है।"

मेन रोड से लगी संकरी गली में फसा हुआ-सा मकान। छोटी-सी जगह में सारे कमरे उठे हुए। कमरे इतने छोटे कि बस एक खाट भर बिछाई जा सकती है। चारों ओर कमरों से घिरा ऊंचा-ऊंचा मकान, जिसमें आंगन

नाम की चीज ही नही। हर कमरे के दरवाजे पर ढेर-सा कूड़ा-कचरा, लोटा, बाल्टी, धुआं करती अंगीठी रखी होती। लगता ही नही किसी घर में हैं। लगता है किसी अस्पताल का जनरल वार्ड हो। यह जमीन मौसाजी को सालो चलने वाले मामले के बाद मिली थी, वरना मडला छोड़कर जबलपुर आकर बसने को किसी ने सोचा न था।

सिल पर बड़े के लिए दाल पीसती मौसी बोल रही थी, "बेटा, जो आदमी सारी उम्र डिप्टी कलेक्टरी के बाद सिर्फ कलेक्टर नही बना, सारी उम्र गवरमेंट से लड़ना, वरना डाइरेक्ट डिप्टी कलेक्टर को कलेक्टर बनने में कितने दिन लगते है? पर वहा न उनसे यह हुआ, न एक पैसा जोड़ा, अब बुढापे में होहल्ला मचाने से क्या होता है? इनकी मती तो हमेशा मारी गई, जब पैसा जोड़ना था तब तो नही जोड़ा, अब शादी-ब्याह रचाना है तो पैसा जोड रहे है। उन्हें समझाये कौन?"

सिल पर दुबारा दाल डालते हुए मौसी बोली, "एक बार सुमी ने उन्हें पत्र लिखा था, जाने किसके साथ ब्याह करने का, जो लिखा था वह सुमी ही जाने। पत्र देखते ही भडक गये, चिल्ला-चिल्लाकर घर सिर पर उठा लिया कि लड़किया मुझे चिट्ठियां लिखती है। उस दिन इन लोगो को इतना मारा था कि उस दिन चूल्हा तक नही जला। भला बताओ, चिट्ठी तो बिना पढ़े फाड़ दी, फिर मारने दौड़े।"

उसने देखा, कोने वाली दीवार के पास की पेटी में कपड़े जमाती सुमी धीरे से आंचल से आंसू पोंछ रही थी। उसकी नजर सुमी के पतले शरीर को नापती हुई पैरो के पंजों पर ठहर गई, जहा पजे जगह-जगह से फट गये थे।

मथुरा स्टेशन पर अचानक सुमी दिख गई थी। किसी इण्टरव्यू में आयी थी। लाइनो वाली साड़ी मे कसी, भीड़ में खोयी सी आंखें। सुमी को देखा, जाने क्यो उसे तभी लगा कि जल्द ही हरियाली सूखने वाली है। फिर सुमी से हमेशा का पूछा हुआ प्रश्न, "सुमी, भविष्य का क्या होगा?"
"सोचना क्या है, अतुल? समय पर छोड़ा हुआ भविष्य कभी लगाम मे नहीं

कसता। इन्तजार के सिवा कर भी क्या सकते हैं ?"

"पर ऐसे तो न जाने कितने वर्ष बीत जाएंगे।"

"बीत जाने दो, कौन सालों की ईंट से किनारे बाधना है। समुन्दर का पानी ही भला लगता है, जिसका कोई किनारा नहीं दिखता। कम-से-कम मन को इस भुलावे मे लाया तो जा सकता है कि अभी तो किनारे ढूढ़ना है। क्या तुम ऐसा नही सोचते ?"

खिसकती ट्रेन में डबडबाई दो आंखे "अतुल, माँ-बाप के ठुकराये आशीर्वाद से जीवन नही बनता, फिर बप्पा शायद हा कह दें, देखो कोशिश करूंगी। *यह अच्छा थोड़े ही लगेगा कि हम उन्हे भूल जाए।* भुलाना बहुत आसान है अतुल, पर याद रखना बहुत मुश्किल है।"

उसके लिए बिस्तर लगाती सुमी बोल रही थी, "अतुल, इस भीड़ भरे घर में इतनी जगह नहीं, जहा हम बैठकर अपने भविष्य, अपने सुखद सपनों के बारे में सोच सकें। हमसे हमारे विचार, हमारी आजादी तक छीन ली गई है। भला इसे कोई घर कहेगा ! मा कहती है, 'ठाकुरजी की मूर्ति भी तो थोडी जगह मे आ जाती है, तो तुम लोग क्यों इतना जी जलाती हो ?' पर मा को कौन समझाये ! ठाकुरजी को हमारी तरह चलना-फिरना नही होता, उन्हें सपने नही आते, उनके मन में कोई इच्छा नही जागती। पर हम इन्सान है, हमे पूरा हम मिलना चाहिए न ! इन्सान होकर जीना बहुत मुश्किल है। जब से बप्पा रिटायर होकर यहा आये है, तब से यह हाल है। किससे कहे, मा खुद पागल हो गई है।" सुमी चुप हो गई थी। उसकी आंखो की कोरें चमक रही थी।

सड़क की लाइट सुमी पर पड़ रही थी। खर्राटों की आवाज़ चारों तरफ से आ रही थी।

"तुम मेरे साथ चलोगी, सुमी ?"

"यह प्रश्न सुबह भी पूछा जा सकता था, इसके लिए इतनी रात को उठाने की क्या आवश्यकता थी ?" सुमी के शब्दों मे क्रोध था।

"सुबह मैं चला जाऊंगा, सुमी, गाड़ी पांच बजे जाती है, तब तुम सोती

रहोगी !"

सुमी चुपचाप अंधेरे में खड़ी अतुल की मूर्ति को देखती रही, फिर खिड़की के उजाले में पीठ खोलकर सामने कर दी, जहां बेंत के लाल-लाल निशान थे, जो अभी तक कच्चे थे। अतुल सिहर गया।

"अच्छा हुआ अतुल, तुमने मुझे उठाया। मैं तुम्हे यह निशान दिखाना चाहती थी। तुम सोचते होगे, मैं अपनी तरफ से प्रयत्न नही करती। इनाम में देख लिया न? ये भर भी नही पायेंगे कि फिर ताजा हो जायेंगे।"

"अतुल, क्या तुम बप्पा की मौत तक इन्तजार नही कर सकते?" जिस दिन बप्पा मरेंगे, मैं तुम्हारे पास चली आऊंगी, बस!"

सड़क की बत्ती अचानक चली गई थी और अंधेरे मे डूबे मकान अजीब-से लग रहे थे।

त्योहार

धान की खाली ढोली मे भूरी बिल्ली ने बच्चे जन दिये थे। भूर-भूरे, गिलगिले-से थे वे। भूरी बिल्ली उन्हे समेटे गुर्राती बैठी थी। शानो लकडी की सीढियों पर खड़ी झांक रही थी।

अम्मा शानो को ढूढ़ती फिर रही थी। बच्चों के लिए सुबह होना भी कितना बुरा होता है, खाट से अभी उठ भी नही पाते कि मदरसे जाने की चिन्ता आ घेरती है।

वायल का हल्दी-रंग का दुपट्टा ओढ़े शानो को रोज घर से मदरसे की दूरी तय करनी होती है। आज भूरी बिल्ली के बच्चे होने की खुशी में भी मदरसे की छुट्टी नही थी, अम्मा ढूढ़ती फिर रही थी।

"धूप सिर पर आ गई है और तू यहां सीढियों पर टंगी है, मदरसे नहीं जायेगी ?"

अम्मा की डांट से शानो धीरे से सीढ़ियां उतरकर बावर्चीखाने मे आ गई। पेट भरा होगा तब तो जनाब जी की मार सह पायेगी।

शानो को देखते ही उसने बासी खाना रकाबी मे निकाल दिया, शानो टाट के टुकड़े पर बैठी खाने लगी।

"लग गई सुबह-सुबह झोंपड़ी में आग !" अम्मा कुएं की ओर जाते-जाते चिल्लायी।

अम्मा को देख शानो जल्दी-जल्दी बासी खाना निगलने लगी। रोज

सूरज कालो नाई की टूटी मिट्टी की दीवार पर ही उगता था। कालो नाई की मां अपना सिर ऊंचा उठाकर कहती थी, "अरे, मेरी मा ने तो झाड़ू मारकर सूरज को ऊपर भगा दिया, वरना वह तो नीचे था।"

तब से मुहल्ले के सारे बच्चों को एतराज था कि सूरज उनके आंगन मे पहले क्यो नही आता, रोज कालो नाई की मिट्टी की टूटी दीवार पर ही क्यो उगता है?

रात से कालो नाई की वहू गवेलन के दर्द में पड़ी है। परसो ही उसने तीसरे बेटे को जन्म दिया है। अम्मा कह रही थी—गवेलन का दर्द किसी-किसी को उठता है। बच्चेदानी बच्चे को ढूढ़ती घूमती है, उसी को गवेलन का दर्द कहते है।

कालो नाई की मा परेशान थी, वह दर्द से छटपटा रही थी। अम्मा शानो के हाथो मटआलू भेज रही थीं, "जा, कालो की बीबी को दे देना··· चुपचाप खटिया के पायताने से दे देना।"

अम्मा हाथ की बनी दवाई और टोटके खूब जानती है। अब्बा के वक्त भी उन्होने काफी कुछ किया, पर अब्बा की दमे की बीमारी उनका दम लेकर ही छूटी।

वह अब्बा वाली टूटी केन की कुर्सी पर बैठी अपना पुराना स्वेटर उधेड रही है। आपा कहती थी, पुराना स्वेटर उधेड़कर ऊन को लच्छियों मे करके धो लो तो फिर नया हो जाता है।

कालो नाई के यहां से लोरी की आवाज आ रही है—"सकरडण्डे का झूला जी, जच्चा रानी झूले री।"

शानो गुड़िया को टहला-टहलाकर सुला रही थी।

भूरी बिल्ली ढोली से बाहर पेट भरने की चिन्ता में निकली थी, ढोली के अन्दर से बच्चे बारीक आवाज में 'म्याऊं-म्याऊं' कर रहे थे।

"अम्मा, रमजान आ गये है, चूना मगवा लेना। मैं घर लीप डालूगी।"

अम्मा कोई उत्तर नही देती, चुपचाप चावल बीनती रहती है। वह

अम्मा को एक बार गौर से देखकर आँखें लच्छियों पर झुका लेती है।

धूप सरकते-सरकते दालान तक आ गई थी।

सामने का बड़ा-सा टीन का दरवाजा, जो पूरी तरह टूटकर एक ओर झुक गया था, उससे लगी दीवार भी पिछली बरसात में धसक गई थी। टूटी दीवार से सडक का आधा भाग दीख जाता था, वही से हाथ में टोकना लिये खाला आती दिखती है। खाला को सब 'अण्डे वाली खाला' कहते है। जब से उनके शौहर मरे, उन्होंने अण्डे खरीदकर बेचने का धन्धा शुरू कर दिया है।

"देखो ऐसी होती है बड़े घर की पोल, मुझ गरीबनी को सब नाम रखते है, अरी वह करीम की छम्मकछल्ली मरद के मरते ही स्कूल मे मास्टरनी हो गई!" आते ही खाला ने बातों का बन्द पिटारा खोला।

"बहन, मरद मर गया, तीन-तीन बच्चों को उसकी छाती पर खूटे की तरह गाड गया, नौकरी करके नहीं खिलायेगी तो किस टूकने में ढाकेगी तीनो को?" अम्मा जमीन पर गिरे चावल के दानों को एक-एक कर चुनते कहती है।

खाला हां मे सिर हिलाकर चुप हो जाती है। घर-घर घूमकर अण्डे बेचने वाली और जकात के कपडे बटोरने वाली खाला चलती-फिरती अखबार थी, मोहल्ले की हर बात का पता उन्हीं से लगता है। ठिगने कद की खाला रोजे-नमाज से दूर ही रहती है, कोई टोकता तो साफ सुना देती, "भई, बिना झूठ बोले हमारा रोजगार नहीं चलता, दिन मे पच्चीसों झूठ बोलने पडते हैं। ऐसे में क्या रोजा रखें, हम गरीबों का तो हर दिन रोजा है।"

शानो गन्दे हाथ सामने दरवाजे पर लटक रहे परदे से पोछ लेती है।

"तेरे लिए तो परदा ही तौलिया है।" अम्मा कहती है।

"खाला, रमजान आ रहे है, इस साल कितनी साड़िया मिलेंगी?"

"कहा, महंगाई के मारे लोगो ने जकात निकालना भी कम कर दिया है। हा, वह जीया है न जो पिछली बार बाल-बच्चो के साथ तुम्हारे यहां

आया था, उसने कहा है मेरे लिए कपड़े भेजने को। अरे, वह हर साल काफी जकात बांट देता है न !"

वह खाला के पैर को ध्यान से देखने लगती है, एक्ज़ीमा से पूरा पैर खराब हो गया है, उस पर लगाया काला मलहम और भयानक-सा दिखता है।

"तो चलू, अभी काफी दूर जाना है।" खाला अपना पिटारा उठाये जाने लगी।

उसके जाने के बाद फिर एक चुप्पी-सी छा गई। अम्मा बिने हुए चावल उठाये अन्दर चली जाती है। शानो धूप में खडी कौवे उड़ा रही है जो बार-बार मुंडेर पर आकर बैठ जाते है।

शानो जब साल-भर की थी तब ही अब्बा गुजर गये थे। अब्बा के बाद अम्मा देसी दवा बना-बनाकर किसी तरह काम चला लेती है। उनकी बनाई दवा बहुत जल्दी फायदा पहुंचाती है इसलिए सारे लोग यही आते है।

दुबली-सी हड्डियों का पिंजर थी अम्मा, अब कितनी चिड़चिड़ी हो गई है।

पिछली गर्मियों मे जीया भाई आये थे—अम्मा के बहुत दूर के रिश्ते के भाई का लडका। दो दिन ठहरकर गया था, पर ये दो दिन दो साल की तरह बीते। हर बात ढाकते-ढांकते भी खुल जाती थी। शानो चट से जीया भाई से कह देती थी कि वे लोग कभी-कभी बिना तरकारी के ही रूखा खाना खा लेते है, और सारे खेत गुप्ताजी के यहा गिरवी पड़े है, दो साल से खरीदकर अनाज खा रहे हैं।

इन दो दिनो मे अम्मा ज्यादा बूढी लगने लगी थी। शानो को पीछे दालान में ले जाकर मारा भी था, पर उससे क्या होता है ! जीया भाई खुद अपनी आखों क्या नही देख रहे थे ?

जाते वक्त शानो के हाथ में दस का नोट पकडा दिया, बाद मे शानो की इस गंदी आदत पर अम्मा ने उसकी पिटाई की थी और शानो डरकर

दिन-भर कालो नाई की टूटी दीवार की आड़ में छिपी बैठी रही।

भूरी बिल्ली धूप में लोट रही थी। मस्जिद की मीनार साफ दिख रही थी, उस पर कोई चढ़ा लिपाई कर रहा था। सड़क की दालान वाले नये मकान की भी सफाई हो रही थी। ईद पास ही तो आ गई है।

वह टूटी चिक में कपड़ा लगाकर सिल रही थी।

बाहर से शानो दौड़ती आयी, "आपा, मोहल्ले में सब कह रहे हैं कि रमजान का चांद दिख गया।"

"अच्छा, तूने देखा?"

"हां, सब काली नाई की टूटी दीवार के पास से ही देख रहे हैं। मैंने भी देखा, पतला-सा था।"

"क्या है, क्यों चिल्ला रही है?" अम्मा दालान में आते बोली।

"अम्मा, रमजान का चांद दिख गया।"

अम्मा का चेहरा उतर-सा गया, जरा संभली, "इतनी जल्दी ईद आ रही है। ये त्योहार भी कितनी जल्दी-जल्दी आ जाते हैं।"

अम्मा कमरे में चली गई। शानो फिर उछलती बाहर चली गई। उसे याद आया, पहले कितनी बेसब्री से ईद का इन्तजार होता था और अब ईद के नाम से ही जैसे घर मे खामोशी छा जाती है। ईद शब्द ही कितना डरावना लगने लगा है।

शानो को तो जैसे बहाना मिल गया, वह सोते तक रटती रही—इस बार वह भी बुनकी वाला गुलाबी साटन का गरारा सिलायेगी।

वह अम्मा के चेहरे की उदासी को समझ रही थी। अम्मा चुप अंधेरे को घूरती बैठी थी।

रोजे वाले दिन कितने खाली और लम्बे लगते हैं, फिर घर में काम भी नहीं था। वह सारे दिन दालान मे मंडराती रही। भूरी बिल्ली के बच्चे अब काफी बड़े हो गये थे। छोटे-छोटे नन्हे-से बच्चे दरवाजे की आड़ में छिपकर म्याऊं-म्याऊं चिल्लाते थे। शानो दिन-भर भूरी बिल्ली के बच्चों के पीछे दौड़ती उन्हें तंग करती रहती थी।

हरेक घर में कुछ न कुछ काम शुरू हो गया था । लिपाई-कपड़े सिल रहे थे या सेवइयां बन रही थी।

अम्मा अब तीज-त्योहार से चिढ़-सी गई थी। उनका कहना था, ये त्योहार हमें दूसरों के सामने नंगा करने चले आते हैं।

सामने ढलान पर बना नया मकान रमजानी का है। किसी जमाने में रमजानी की बेवा मां फातिमा टूटे-से झोपड़े में रहती थी। गोश्त बेचकर किसी तरह से रमजानी को पाल रही थी। यही रमजानी पहले बड़े-बड़े अफसरों के यहां वधवा गोश्त देने जाता था, और अब वही रमजानी इस मोहल्ले का रईस है। जुमे-जुमेरात फकीरों की भीड़ उसके दरवाजे पर खड़ी रहती है। हर साल रमजान की सत्ताईस तारीख को जकात के कपड़े बांटता है। बाहर के मौलाना को बुलाकर अपने घर पर जोर-शोर से मिलाद-वाज कराता है।

रमजानी का जिक्र आते ही जाने क्यों अम्मा चिढ़ जाती है। अम्मा कहती है—'कयामत के आसार हैं, कुरान में लिखा है। छोटे लोग बड़े-बड़े पक्के मकान बनायेंगे, पैसे वाले हो जायेंगे, और बड़े लोग, खानदानी लोग गरीब हो जायेंगे।'

सत्ताईस तारीख को रमजानी के दरवाजे पर सुबह से ही भीड़ थी। फकीर अजीब-अजीब सवाल करते बैठे थे।

उसकी जिद से अम्मा ने चूना मंगवा दिया था, वह दुपट्टा कसकर लीपने में लगी थी। तमाम घर गन्दा-सा बिखरा पड़ा था, इधर-उधर चूना गिरा पड़ा था। शानो गिरे हुए गीले चूने से जमीन में लकीरें खींच-खींचकर खेल रही थी।

आज रमजान की सत्ताईस तारीख हो गई थी, सिर्फ उंगली पर गिनने तीन दिन ईद को रह गये थे। शानो की बुनकी वाले साटन के गरारे के लिए जिद बढ़ती जा रही थी। उसका कहना था, उसकी सारी सहेलियों के कपड़े सिल गये हैं, सब उससे पूछते हैं। शानो बार-बार अम्मा को झिझोड़ती—"आखिर हमारे घर कपड़े क्यों नहीं आये?"

अम्मा आखिर उसे कैसे समझाती कि वाकई वे लोग गरीब हो गये है। ईद मे वे लोग नये कपडे नही पहनेंगे, किसी के घर मिलने नहीं जायेंगे। घर ही रहेगें। लोग कितने किस्म की बातें करेंगे। सब पुराने वक्त को आंखों रखकर आज देखते है।

अम्मा का चेहरा, जैसे-जैसे दिन घटते जाते, सफेद पड़ता जाता था, उनके चेहरे की लकीरें चिडचिडाहट मे बदलती जाती थीं।

खाला कई बार चक्कर काटकर टोह ले चुकी है कि घर मे नये कपड़े बन गये या नही। अम्मा खाला के सवाल को टाल जाती और उनके जाने के बाद बडबडाती—"आखिर ईद में नये कपड़े पहनना क्या जरूरी है? लोग क्यो बार-बार पूछते है? हम किसी की ढकी हंडी खोलने तो नही जाती!"

रमजानी के घर की भीड मे खाला भी थी, शानो आकर खबर दे गई थी।

"जाने मरद के मरते ही यह कैसे फकीरों मे शामिल हो गई! इसे जरा शरम नहीं···जकात के कपडें पहनती है।" अम्मा बडबडा रही थी।

"कल मेरे कपड़े नही आयेंगे तो मैं मरदसे नही जाऊंगी!" शानो आखिरी वार्निंग देकर खाट पर औंधी हो जाती है।

कमरे मे अम्मा जाने क्या खड-खड कर रही थी। वह पास गई। देखा, पेटी से पुरानी बनारसी साड़ी निकाल रही थी जो अब छन-सी गई थी।

"देख, इसका शानो के लिए फ्राक सी दूगी, अच्छा लगेगा न?"

"मगर एक फ्राक के लिए पूरी साड़ी खराब करोगी?"

"ऊंह, अब इसमे दम ही क्या है, बेचारी बच्ची नये कपड़े के लिए हलकान हुई जा रही है।"

उसने अम्मा को देखा, उनका चेहरा अब ठीक लग रहा था।

दोपहर को अम्मा साड़ी और कैंची लिये दालान मे बैठी ही थीं कि शानो बाहर से सरपट दौडती आयी।

"अम्मा, अम्मा! सामने अपने यहां पोस्टमैन खडा है, पार्सल लाया

है।"

"क्या बकती है—पार्सल यहां कौन भेजेगा ? क्या कब्रिस्तान से आज-कल पार्सल आने लगे हैं ?''

अम्मा की झिड़की पर शानो रुआंसी हो गई।

"पार्सल ले लीजिए।" पोस्टमैन की आवाज आयी।

"सच अम्मा, देखो न, पोस्टमैन तो खड़ा है।"

अम्मा बाहर की तरफ लपकी।

"इस पर दस्तखत या अंगूठा कर दीजिए।" पोस्टमैन ने कहा।

अम्मा ने अंगूठा लगा दिया। तीनों हैरत से उस बड़े बंडल को घूर रहे थे। शानो अम्मा के हाथ से पार्सल छीनकर ऊपर लिखे नाम को पढ़ने लगी।

"अम्मा, मुंगेर से आया है।"

दालान में पड़ी कैंची से उसने पार्सल को किनारे से कतरा और अन्दर की वस्तु को खींच लिया। अन्दर पीले फूलों वाला साटन का कपड़ा था, शानो खुशी से नाच उठी।

"मुंगेर से किसने कपड़े भेजे होंगे ?"

"अरे अम्मा, भूल गई ! मुंगेर में ही तो जीया भाई रहते है।"

"ओह ! तो जीया ने भेजा है।" अम्मा खुश होकर साटन पर हाथ फरने लगी, "ला, गरारा काट दू, ईद के रह ही कितने दिन गये हैं।"

अम्मा ने बहुत दिनों बाद ईद शब्द का उच्चारण कुछ जोर से किया था। उनके चेहरे पर प्रसन्नता साफ दीख रही थी। अम्मा के चेहरे पर प्रसन्नता देख उसे अच्छा लगा, मन से बहुत कुछ धुल-सा गया।

शानो खुशी से चिल्लाती हुई कमरे मे दौडी, नाप के लिए पुराना गरारा लाने।

शाम को खाला आयेंगी तो उन्हें वह पहले कपड़ा दिखायेगी, उन्होंने तो इज्जत के बेरंगे चोले को उसी तरह उतार दिया था, जिस तरह खालू के मरने के बाद बुरका उतार दिया था।

लग रहा था, घर से वह मनहूस उदासी कोलती के रास्ते से भाग गई थी।

अदालत का चपरासी अम्मा के नाम कुर्की का नोटिस लाया था। नोटिस लाने वाला भरी दोपहर को आया था, जब सारे मोहल्ले के दरवाजे बन्द थे। इस मोहल्ले के लोग दोपहर के खाने के समय या सोने के समय दरवाजा लगा लेते है। किसी ने नहीं देखा, वरना शाम तक कितने प्रश्न हो जाते।

भविष्य के सैंकडों प्रश्न सामने मुह फाड़े खड़े थे और उन सबके बीच अम्मा अवाक्-सी चुप खडी थी। उनका चेहरा इतना सफेद क्यों होता जा रहा है ?

एक भयानक और तिलमिला देने वाला सत्य सामने था, आज अम्मा को अब्बा की उतनी नहीं, जितनी मरे हुए बेटे शमीम की याद आयी होगी। औरत का मरद के बाद बेटा ही वह खूटा होता है जिससे वह बंधी रहती है।

कालो नाई की मां खपरैल लेकर आग मांगने आयी थी।

दालान पर नन्हे गीले पैरो के निशान शानो के थे।

वह चुपचाप शानो की छोटी-सी खटोली पर लेटी छत के काले बांस को घूर रही थी। घर का वातावरण चुप-सा हो गया था। इस मौन में कितनी स्मृतियां उभर रही थी, जिन्हें वह हाथ बढ़ाकर पकड़ लेना चाहती थी, जिस तरह बचपन मे वह तितली पकडती थी।

मोहल्ले में चांद देखने वालो की हलचल थी, बच्चे-बडे सब टोलियों में खड़े चाद देख रहे थे। कई तरह की बातें उभर रही थी। चांद नहीं दिखा था। सब अन्दाजा कर रहे थे कि तीसे चाद की ईद होगी।

अंधेरा बढ़ गया था। लालटेन की रोशनी मे झुकी शानो सबक को रट रही थी। लालटेन के उजाले में चिक की परछाईं धारी-धारी पड़ रही थी।

बाहर से जल्दी से खाला आती दिखी, उनके एक हाथ में थैला था। आते ही वह शानो के पास जमीन पर ही बैठ गई।

"चांद नही दिखा, खाला ?"

"नहीं, कालो नाई बता रहा था कि पाकिस्तान में चांद दिख गया है। मुआ चांद भी पहले वहीं दिख जाता है।"

शानो घुटने मोडे मेढक की तरह उछलती खाला के थैले की ओर लपकी, "इसमे क्या है, खाला ?"

"बताती हूं, बताती हूं, थोड़ा तो सब्र कर, वही तो दिखाने को आयी हूं''' आज मेरे नाम पार्सल आया है ।" खाला कुछ गर्व से बोली।

"पार्सल !" अम्मा इधर आते बोली।

"अरे, वही मुगेर वाला जीया है न, वह जकात निकालता है तो शानो के लिए सूट का कपड़ा भेजा है।" खाला थैले से कपड़ा निकालती बोली।

लालटेन के उजाले मे खाला ने कपड़े को फैला दिया—वही पीले फूलों वाला साटन था।

अम्मा दीवार के सहारे टिक-सी गई। लालटेन के उजाले में उनकी परछाईं कापती-सी लगी। उसने साफ-साफ देखा, अम्मा की पीली-पीली आंखें बरसाती ढबरे की तरह भर गई थी, जैसे उन्होने गरीब होना कुबूल कर लिया था और पहली बार जकात लेने वालो की लाइन में अपने-आपको खड़ा पा रही थी।

तीसरा पेच

जाने कैसे तपते पहर के किन्ही क्षणो मे वह दो मील चलकर उसका दरवाजा खटखटा रही थी। देव का मकान भी आसानी से नही मिला। प्रोफेसरों के एक ही तरह के बने क्वार्टर्स खड़े थे। नम्बर ढूढ़ते-ढूढ़ते धूप मे अलसाया मुख कुम्हला गया था। आखिर उसका घर मिला और आम की लकड़ी पर पेंट की उसके नाम की तख्ती दिखी। जाफरी के दरवाजे को उसने ऊपर से नीचे तक कालबेल के लिए देखा, फिर उसने बहुत खीझे ढंग से दरवाजे का सांकल खटखटायी।

अन्दर से कोई उत्तर नही मिला। वह देर तक जाफरी के अन्दर रखे गमलों को घूरती रही। दरवाजे का नीला परदा आधा दिख रहा था, आधे भाग को दरवाजे पर पट ढांके था। वह देर तक खड़ी उसके बाहर आने का इन्तजार करती रही। पड़ोस के क्वार्टर की खिड़की से दो-तीन चेहरे बाहर झाके और दरवाजे पर उसे खड़े देख मुसकरा कर अन्दर हो गये।

वह रुआंसी-सी दरवाजे से हटी और पीछे की ओर वाली खिड़की के पास आड़ मे खड़ी हो गई। खिड़की खुली थी, जिसमे से अन्दर का काफी भाग दिख रहा था। पलंग पर एक औंधी खुली किताब पड़ी थी। उसने खिड़की के पास मुह कर पुकारा। उसे अपने आने पर दु:ख हो रहा था, जाने कौन-सी प्रेरणा उसे खींच लायी थी।

भीतर, बहुत भीतर हलचल हुई और रबर के स्लीपर का फर्श पर रगड़ खाने का आभास हुआ। वह खिड़की से हटकर दरवाजे पर आ गई। देव ने छींट के कपड़े का पाजामा और स्लेटी रंग की कमीज पहन रखी थी। उसे जाने क्यों सर्कस के जोकर की याद आयी, पर हंसी को उसने जबर्दस्ती दबाये रखा।

उसने साफ-साफ देखा, उसके आने से उसके चेहरे पर प्रसन्नता के कोई लक्षण नहीं दिख रहे थे। वह बौखला-सी गई और उसे खुद अपना कहा जुमला सुनायी दिया, "आज इतवार था इसलिए···"

उसने वाक्य पूरा जान-बूझकर नही किया। देखें, आगे वह क्या बोलता है! पर वह कुछ नहीं बोला, चुपचाप दरवाजे से हटकर एक ओर हो गया।

वह उसके घर पहली बार आयी थी। पहली ही दृष्टि मे उसने अनुमान लगा लिया कि घर बहुत अच्छा और नये ढंग से सजा-संवरा है।

"एक लम्बे समय के बाद मैं अपने घर मे किसी स्त्री को देख रहा हूं।"

उसका आचल नागफनी के कांटे मे उलझ गया। आंचल हाथ में लिये चिरे हुए भाग को देखती वह मुसकरा दी।

"आंचल फट गया ?"

"यू ही, जरा-सा।" उसने हाथ मे पकड़े छोर को नीचे गिरा दिया।

पलंग पर पड़ी औंधी पुस्तक को उसने उठा लिया और पलंग में धंस गई। देव स्टूल पर बैठा था। उसे अभी भी सर्कस के जोकर की याद आ रही थी और शायद यही कारण था जिससे वह खुल नहीं पा रही थी। शायद वह ताड़ गया और उठकर अन्दर चला गया।

दूसरा कमरा इसी कमरे से लगा था। बीच का परदा दरवाजे के ऊपर रख दिया गया था, जिससे कमरा साफ दिख रहा था। उसने आंखें मोड़कर दीवार पर टंगी पेंटिंग पर लगा दी। वह दीवार को देख रही थी, पर उसने महसूस किया बीच का परदा नहीं गिराया गया है।

जाने क्यों, उसका मन रोष से भर गया था। वह आया तब भी उसने अपनी दृष्टि दीवार पर से नहीं हटाई।

"यह पेंटिंग तुम्हारी है ?" उसने अपने को व्यस्त जताते हुए पूछा।

"हां, तुम्हे पसन्द है ?"

इस बार उसने देव के वाक्य मे गीलापन महसूस किया। उसने उलट-कर उसे देखा, अब वाकई वह अच्छा लग रहा था। उसे उसकी पहली वाली ड्रेस याद कर जोर से हंसी आ गई।

"तुम रंग-बिरंगे पाजामे क्यों पहनते हो ?"

देव चुप रहा, शायद उसका वाक्य उसे लग गया था। बिना उत्तर दिये वह टेबल की ओर बढ़ा, जहां स्टोव रखा था। उसने देखा, वहां आधा संतरा रखा था, एक प्लेट मे छोड़ा हुआ सेव-चूड़ा रखा था। एक ओर बाजार की खरीदी अचार की शीशिया रखी थी।

"पाउडर की चाय चलेगी ?"

वह देर तक सोचने का अभिनय करती रही, "हा, दूध न हो तो चलाना पड़गी।" वह उसे सहज में भारमुक्त करना नहीं चाहती थी।

वह उठकर खिड़की के पास आ गई, जहा एक लकड़ी के छोटे-से खोखे को लाल रंग से रगकर कुछ लगाया गया था। उसके आस-पास रगे हुए सुन्दर पत्थर सजे थे।

"तुम्हें पसन्द आया, यह शीला ने सजाया था।"

"अच्छा !" उसने महसूस किया वह एकदम उससे सटकर खड़ा है। उसके शरीर की गर्मी उसे महसूस हो रही थी। वह पीछे खिसक गई। देव का मुख लाल हो गया।

"अरे, हा ! सच, तुम्हारी शीला की तो हत्या हुई थी न ? तुमने कुछ बताया नहीं !"

उसने साफ देखा, देव के मुख पर कुरेदे हुए घाव की पीड़ा थी। उसे अच्छा लगा।

"मैंने सुना था कि शीला के किसी और से सम्बन्ध थे ?" उसने खोदना

चाहा, वैसे उसे सारी बातें मालूम थीं कि उसकी दूसरी पत्नी शीला का कोई पुराना प्रेमी अचानक अमेरिका से लौट आया था और उसी ने शीला की हत्या की थी। सारे अखबारवालों ने बड़ी-बड़ी सुर्खियों से यह खबर छापी थी। पर देव ने कभी इस बात की चर्चा नहीं की, पहले वह समझती रही शायद वह अपने दुख को याद करना नहीं चाहता हो, पर बाद में भी देव ने कुछ नहीं बताया। अब उसे पीड़ा देना अच्छा लग रहा था।

"पुरानी बातें समय की कब्र में दफन हो जाती हैं, उन्हें दुबारा उभारने से फायदा?"

स्टोव की घर्र-घर्र पूरे कमरे मे भर गई थी। वह स्टोव बन्द होने का इन्तजार करने लगी। वह टेबल पर झुका माचिस की तीली से कान खुजा रहा था। चाय पीते हुए वह चुप था, शायद वह कुछ सोच रहा था, या वैसा अभिनय कर रहा था। उसने खिड़की के बाहर देखा, बाहर गर्मी की धूप तप रही थी। उसे लगा दोपहर का समय बहुत भारी हो उठा है।

"छुट्टियों का क्या प्रोग्राम है?" उसने फिर खोदा।

"देखो! वैसे जाना तो दिल्ली है ही, बच्चों को देखना है। मां का पत्र आया था कि घर शायद बिकने वाला है।"

"तुम बच्चों को पास क्यों नहीं रख लेते?"

"मैं कॉलिज चला जाता हूं, पीछे उन्हें कौन देखेगा?"

"तो मा को बुला लो, आखिर वह भी तो वहां अकेली ही रहती हैं।"

"मा बहुत बूढ़ी है।" देव ने अचकचाकर उत्तर दिया—शायद उसने इसका उत्तर नहीं खोजा था।

"पहली पत्नी को बुला लो, आखिर बच्चे तो उसी के है।"

"उससे तलाक हो चुका है।"

"तो क्या हुआ? फर्क क्या पड़ता है, सम्बन्ध तो मन बनाता है, पहले तुम्हारा-उसका झगडा था, पर अब दोनों के मन साफ हो गए होंगे। क्या तुम भी समाज के बनाये बन्धन को सम्बन्ध कहते हो?"

देव ने उसे खाली आंखों से देखा, मानो वह अर्थ ढूढ़ रहा हो।

"नहीं, अब तो नये जीवन-साथी की तलाश है, जो जल्दी ही आने वाला है।"

देव के उत्तर से वह अवाक रह गयी। अपने-आपको समेटती हुई-सी बोली, "क्या तुम अब भी गृहस्थी बसाना चाहते हो? मेरे खयाल में तो पत्नी का सुख तुम्हारे भाग्य मे नहीं है।"

देव की आंखों में फिर सूनापन उतर आया। उसी सूनेपन में उसने उस देखा। कही देव के सामने अपना धैर्य न खो दे, इसलिए उसने सामने रखी पुस्तक उठा ली। पुस्तक को बेमतलब उलटने-पलटने मे उसे एक तसवीर दिखी जिसमें तीन बच्चे बैठे थे। उसने देखकर भी अनदेखा कर दिया। घर एकदम खुले मे होने के कारण अच्छा हवादार था और रोशनी बहुत थी। ऊपर रोशनदान की रस्सी नही थी। देव के मुख पर अब भी चोट खाने का भाव था। उसे इस स्थिति से उबारने के लिए उसने कहा, "अपना घर नही दिखाओगे?"

पहले वह अकचकाकर उसे देखने लगा, फिर कुछ परेशान, कुछ गम्भीर-सा वह उठा। दूसरे कमरे काफी सुन्दर सजे-संवरे थे। तीसरे कमरे में एक खुली अलमारी के ऊपर वाले खण्ड में एक फोटो रखा था, जिसके पास अगरबत्ती और फूल रखे थे। वह उस ओर बढ़ी।

"यह तुम्हारी···"

"हां, यह शीला है।"

उसने ध्यान से देखा, नये स्टाइल के कटे बालों में वह बड़ी सुन्दर लग रही थी। वाकई इसकी हत्या हुई तो ठीक ही हुई, ऐसा सौन्दर्य मुरझाने के लिए नही, तोड़ने के लिए ही बनाया जाता है।

इस कमरे में भी एक पलंग बिछा था, जिस पर एकदम मुडी-तुड़ी-सी चादर पड़ी थी, दो तकिये इधर-उधर पड़े थे।

"यहां कौन सोता है?"

"यहां?···वह···शीला की याद में रहता है।" वह बौखला गया लग रहा था।

उसके उत्तर से उसे सन्तोष नही हुआ, फिर भी उसने आगे कुछ नही पूछा। वह बरामदे में आ गई। बरामदे भर में सुन्दरता से पेंट किये गमले रखे थे। दीवारों पर भी छोटे-छोटे गमले लटक रहे थे। बरामदे के एक ओर रसोईघर और उससे लगा बाथरूम था।

जाने कैसे उसके मन मे विचार आया कि क्यों न वह उसके आग्रह को मान जाये और ब्याह की स्वीकृति दे दे। यह भाव शायद उसका घर देखने के बाद ही उसके मन में जगा था। क्या फर्क पड़ता है? भूकम्प आते हैं, कच्चे मकान गिर जाते है, पर मलबा हटाकर नयी इमारत भी तो बनाई जाती है। क्यो न कब से बने इस नक्शे पर मकान बना ही लिया जाये? इसकी दूसरी पत्नी भी नौकरी करती थी, वह भी करेगा। पर इसके साथ पत्नियों का भाग्य क्यो नही जुड़ा? क्या हुआ, कभी दो पेंच से ढक्कन नही बैठता, पर तीसरे पेच से बैठ जाता है।

सोचते हुए उसके मुख पर कोमल-सा भाव उभर गया। उसने देव की ओर देखा, वह नीचे झुका गमले मे गिरे कचरे को निकाल रहा था। उसने आंगन की ओर देखा, मटर के पौधो के बीच गोभी का एक फूल दिख रहा था।

"पीछे का दरवाजा खुला है, बकरी आकर सब नष्ट नही करती है?"

पहले वह चौंका, फिर वह स्वस्थ होकर खुलकर हंसा। उसने देखा, देव का उलझा-सा चेहरा साफ हो गया था, और वह वही पुराना कहकहे लगाते जाना-पहचाना लग रहा था। वह मुसकरा दी।

"तुम तो ऐसे इन्क्वायरी कर रही हो, मानो तुम वाकई मेरी पत्नी हो।"

वह एकदम झेंप गई। फटे आंचल मे उंगली डालकर मोड़ने लगी।

"न-न, और फट जायेगा।"

इस बार वह जोर से हंस दी, "और तुम इस तरह बोल रहे हो, मानो तुम मेरे पति हो और चिन्ता हो कि साड़ी फटने पर नयी लानी होगी।" दोनों की हंसी सूने बरामदे मे गूंज गई। देव ने उसके कन्धे पर हाथ रख

दिया, "तो मैं समझू कि तीसरी गली भी इस सड़क से मिलने वाली है ?"

वह आंखें नीचे किए हंस दी। देव का चेहरा खिल पड़ा। उसने उसके कन्धे को जोर से दबाया।

"चलो, कमरे में चलें।"

"हां, तुम चलो, मैं बाथरूम से आती हूं।"

वह निश्चिन्त-सा लौट गया। उसे आश्चर्य हो रहा था। कमरे दिखाने के समय वह सहमा-सहमा था और अब वह एकदम निश्चिन्त कैसे हो गया ? उसने बाथरूम का दरवाजा खोला। लकड़ी की चौकी पर एक लेस-टंका लहंगा भीगा हुआ रखा था। उसे हंसी आयी, कितना जोकर है, यह लहंगा भी पहनता है। उसने पैर से लहंगे को एक ओर करना चाहा कि अचानक उसके मन में एक विचार कौंधा और वह आश्चर्य में पड़ गई।

वह बाथरूम से तुरन्त निकल आयी। कमरे में वह सीटी बजा रहा था। उसने अपना चेहरा कठोर बना लिया। देव बहुत प्रसन्न लग रहा था।

"इतने प्रसन्न क्यों हो ?" उसने चिढ़कर पूछा।

"प्रसन्नता इस बात की है कि तीसरी गली पर अब अपना आखिरी मकान बनेगा।"

वह उसकी बात से कुढ़ गई। उसने दीवार पर लगे फ्रेम को देखा जिसमे लैम्पपोस्ट पर अकेला कबूतर बैठा था। उसने उत्तर नहीं दिया और वह जाने के लिए उठी।

वह लौटने लगी तो पहली बार उसके मन को फटे आचल का दुख घेरे था।

अपने-अपने दायरे

तागा घर के सामने रुका। वह जल्दी से उतरी और तांगेवाले को पैसे दे, दाएं हाथ में अटैची पकड़े घर में घुसी। पहले कमरे को पार कर वह अन्दर चली गयी और परदा उठाकर पुकारा—"मा, मां!"

पीछे आंगन में उभरती हुई आवाज आयी, "कौन? माया! मेरी माया!" उसने देखा, मा दालान पार कर जल्दी से उसके पास आ गयी है। उसने उसे सीने से भीच लिया और आश्चर्य से बोली—"कब आयी, रे? खबर नही की? दिनेश नहीं आया?"

मा ने एक ही सास मे इतने प्रश्न कर दिये। वह मां के कन्धे पर सिर टिकाये और इतने दिनो बाद मिलने से निकल पड़ रहे आसुओं को भीतर ही संभालते हुए बोली, "नहीं, उन्हे छुट्टी नही मिली। मैं अकेले ही चली आयी।"

"चलो, अच्छा ही किया। न जाने कितने दिन बीत गये तुझे देखे।" फिर उसका हाथ पकड़ घसीटती हुई बोली, "अच्छा, चल, मुह-हाथ धो ले। मैं तेरे लिए नाश्ते का इन्तजाम करती हूं।"

वह गुसलखाने मे घुस गयी। वही उसने अपना जूड़ा नये सिरे से बाधा, साडी बदली, जो सफर में एकदम गदी हो गयी थी। मुह-हाथ धोकर वह दाएं बाजू के मां के कमरे मे चली गयी। कमरे में एक तरफ पलंग बिछा था, किनारे कोने मे पेटियां थी। वहीं पेटियों के पास कपड़े बदलने के लिए दरी

बिछी थी। पेटियों के ऊपर खूटी थी, जहां मां के सफेद रंग के दो ब्लाउज और हलके नीले रंग की शाल टंगी थी। पलंग के पास छोटी-सी मेज पर टेबल-लैम्प के पास एक बड़ी-सी फोटो फ्रेम की हुई रखी थी। यह फोटो उसके कॉलेज के समय की है। वहीं पर एक मुड़ा-तुडा कागज पडा था, जिसे उसने उठा लिया। उसमें पेंसिल से मां ने लिखा था, 'मेरी बेटी माया, मेरी प्यारी बेटी'। यकायक उसकी आखें भीग गयी। मा को कितनी याद आती है। मां कैसे रहती होगी ! पहले तो कभी उसे कही जाने नही देती थी, अब कैसे रहती होगी ! उसे मां की स्थिति पर दया आयी। तभी मां की आवाज आयी—"अरे माया, तेरे बाबूजी आ गये।"

"बाबूजी !" एकाएक उसका मन खिल गया। जल्दी आंखें पोंछकर वह बाहर आ गयी। बाबूजी ने उसे सीने से लगा लिया, "कब आयी, बेटी ?"

"अभी थोड़ी देर हुई, बाबूजी। आप अच्छे है न ?"

"हां-हां, बेटा, अपनी तो कह। हमारी बेटी तो बडी सयानी हो गयी है।" और कमरा हंसी से गूज उठा।

बाबूजी उसे कुर्सी पर बैठाते हुए बोले,"देखें, कौन जल्दी भजिए खाता है—मैं या तुम, या तुम्हारी मां।" तीनो भजिये पर टूट पड़े।

"देख बेटा, तेरी मा फिर हार गयी।" और बाबूजी हंसने लगे। और वह सोच रही थी—कही कुछ नही बदला, सब वैसे ही है जैसे दो वर्ष पहले छोड़ गयी थी। उसे मन ही मन बहुत अच्छा लगा।

नाश्ते के बाद, बाहर लॉन में कुर्सियां डाले देर तक बातें करते रहे। बाबूजी ने क्लर्क को भी भगा दिया, जिसे जरूरी फाइलों के साथ बुलवाया था।

वह पिताजी की किताबों पर झुककर नजर डाल रही थी कि कौन-सी किताबें नयी लाये है। मा बाबूजी से कह रही थी—"देखा, घर कितना भरा-भरा लग रहा है।"

तीनो रात को तब तक बातें करते रहे, जब तक घडी ने जोर-जोर से बारह के घंटे पीटे। तब कही उन लोगो का ध्यान टूटा और बाबूजी टेबल

पर रखे पैर को खींचकर उठ गए, उसके सिर पर हाथ रखा—'गुडनाइट, माई स्वीट चाइल्ड !' और अपने कमरे में चले गये। वह भी मां के साथ कमरे में आ गयी। मा के पलंग के पास ही उसके लिए एक और पलंग बिछा था। पास ही मेज पर दूध का गिलास रखा था।

"मां, मै दूध नही पीऊगी, अब भी क्या मैं बच्ची हू ?"

"पी लो, बेटा, जिद नही करते।" मा ने बच्चों को समझाने के अन्दाज मे कहा। वह भारी मन से गिलास उठाकर गट-गट निगल गयी और रजाई को मुह तक खीचकर बोली, "मां, गुडनाइट !"

सुबह वह देर तक सोती रही। जब नीद टूटी, तो वह जल्दी से उठी और बाथरूम मे घुसकर जल्दी से मुह धोया और नाश्ते के कमरे की तरफ बढी। देखा, मां और बाबूजी उसी का रास्ता देख रहे है। उसने शर्मिन्दगी से घडी की तरफ देखा, नौ बज गये थे।

"बाबूजी, मैं देर तक सोती रही।" उसने धीरे से सफाई दी।

"कोई बात नही, बैठो।" उन्होने उसके लिए अपने पास वाली कुर्सी खीची और गोदी मे नैपकिन फैलाकर दुआ के लिए हाथ उठा लिये। दोनों ने बाबूजी का अनुसरण किया। बाबूजी देर तक अंग्रेजी में जोर-जोर से दुआ पढ़ते रहे। बाद मे जब आमीन कहा, तो दोनों ने आखे खोली और नाश्ता शुरू किया।

दोपहर के खाने के समय बाबूजी नहीं आये। वह बार-बार दरवाजे पर नजर दौडाती कि अब गाडी दिख जाये, पर हर बार वह निराश ही होती। जब काफी समय बीत गया, तो उसने मा के पास जाकर कहा—"मां, बाबूजी नही आये ?"

मां ने वैसे ही काम करते हुए कहा—"वह नही आयेंगे, बेटा, तू खा ले।"

"क्यो ?" उसे लगा, अन्दर कुछ हो गया है।

"बेटा, वह घर मे थोडा ही खाते है, वहीं आफिस में टिफिन मंगवा लेते है। रात को तो पता ही नही, कब आकर खाते है।"

उसे झटका-सा लगा। उसने महसूस किया, मां और बाबूजी के बीच एक दरार जरूर पड गयी है, कही कुछ बदल गया है। वह अपनी उदासी को छिपाने के लिए सूप पीने लगी। पर मा कह रही थी, "वह तो तेरे आने पर इतना भी खा लिया तेरे बाबूजी ने, नही तो कहां !" मा के लहजे में शिकायत थी। उसकी निगाहे चाहकर भी मा के चेहरे पर नही उठ सकीं। वह अपनी निगाहों को मा के चेहरे पर पडने मे बचाते हुए बाहर खिडकी की ओर ताकती रही। उसने खिड़की मे देखा—चपरासी बाबूजी का खाना लिये जा रहा है। उसे घर मे अजीब सन्नाटा-सा लगा। दीवारें ज्यादा लम्बी और उदास लगी। उसने डरते-डरते मा के चेहरे पर निगाह डाली, उसे मां ज्यादा बूढी लगी, चेहरे पर ज्यादा सफेदी पुती लगी। मा का चेहरा उसे वैसा ही लगा, जैसे नदी के किनारे का पत्थर, जो लगातार पानी के थपेडे खाकर ऐसा धुला-पुछा हो गया हो कि अब उस पर पानी के थपेड़ों का कोई असर नही होता।

वह बाहर दालान मे निकल गयी। उसने पहली बार ध्यान दिया कि मां का कमरा एक छोर में है, तो दूसरे छोर मे पिताजी का कमरा है, जबकि पहले ऐसा नही था। दोनो के कमरे पास ही पास थे।

रात को पिताजी आये। तीनो बैठे रहे, पर वह ही बाबूजी से बातें करती रही। मां ने बात नही की, न बाबूजी ने ही पहले दिन की तरह कोई मजाक किया। दोनों एक-दूसरे से आंखें बचाते ऐसे बैठे थे जैसे रेल के डिब्बे में दो अजनबी मुसाफिर बैठे हों, जिन्हे एक-दूसरे से कोई सरोकार नहीं। बस, अपनी-अपनी मंजिल तक पहुचना है। उसे अजीब लगा। उसकी पलकें कही दूर भीग गयी थी। इसलिए उसकी समझ मे नही आ रहा था कि क्या बात करें। जब घडी ने नौ बजाये, तो सब ऐसे चौके, जैसे सब सो रहे थे। बाबूजी उठ गये और हाथ को मस्तक तक ले जाकर कहा, "गुडनाइट, माई स्वीट चाइल्ड !" उसने देखा कि बाबूजी का लहजा कल की तरह प्यार मे भरा नही था। वह भारी कदमों से मां के पीछे चली आयी।

मा उसे बाबूजी के बारे में बताती रही कि अब वह कितने पराये हो

गये है । घर के मामलों मे कोई रुचि नहीं लेते । और अब उनकी आदतें भी बिगड गयी है । रात को'''मा यहां पर आकर रुक गयी । उसका मन कडवा हो गया । कान बहरे हो गए ।

उसने देखा, कही डिनर की दावत आती है, तो वह कागज बाबूजी के टेबिल पर ही रहता है और वह अकेले ही जाते है, मां को डिनर की कोई खबर नहीं होती । रात को बाबूजी के लिए टेबिल पर खाना रखा रहता, सुबह वह बासी खाना कभी आया ले जाती, कभी भगी ले जाता । प्रायः यही होता, पर न कभी मां पूछती, न शिकायत करती, न बाबूजी ही बताने की जरूरत समझते ।

बाहर कोई बैठने आता और पान यदि थोडी देर से पहुंचता, तो बाबूजी सबके सामने चपरासी को बहुत डाटते, पर जो कुछ वह कहते, वे सारी बाते मां के लिए होतीं । मा के पास कोई बैठने आ जाता, तब भी बाबूजी इधर-से-उधर बेमतलब टहलने लगते और दूसरे कमरे में बैठे बड़बड़ाते, "न जाने साले कहां से आ जाते है । यहां तो अपनी सहेलियो से ही फुरसत नही, तो दूसरो का खयाल कौन रखेगा !" बाबूजी के स्वर को सुनकर मा अपना स्वर तेज करके बातें चालू कर देती, ताकि सहेलियां बाबूजी की बातें न सुन पाएं, पर मां की सहेलियां बाबूजी की बातें सुन लेती और तब उसे इतना गुस्सा आता कि वह बाबूजी को बातें सुना दे, पर वह मन मारकर चुप रह जाती ।

रात को अचानक किसी खटके से उसकी आख खुल गयी । उसने रजाई को जरा-सा सरकाकर अंधेरे मे दरवाजे के पार देखा, बाबूजी ओवरकोट पहने, हाथ मे टार्च पकडे धीरे-धीरे बाहर निकले और दरवाजे बन्द कर दालान मे निकल पडे । एकाएक उसकी सांस रुक गयी । उसने रजाई मुह पर ढांप ली और वह रजाई के अन्दर से भी बाबूजी के टार्च की रोशनी को पहले आमो के झुरमुट में, फिर नौकरो के क्वार्टरों की तरफ जाते देखती रही, महसूस करती रही । क्या मा जाग रही है ? हे ईश्वर, बाबूजी इतने बड़े अफसर होते हुए भी नौकरों के क्वार्टर के पास'''छि-

छि. ! और उसकी आंखो से आंसुओ की दो बूंदें रेंगती निकलीं और रजाई में खो गयी।

सुबह जब वह उठी, तो उसे लगा कि शायद रात को बहुत जोर से बुखार आया था। तभी तो अजीब-सा लग रहा है। जब वह नाश्ते की मेज के पास गयी, तो मा को अकेले पाया। उसने मां से बिना नजर मिलाये चुपचाप दुआ मांगी और नाश्ता किया। किसी ने किसी से बात नही की।

दोपहर मां उसे देर तक बाबूजी के बारे में बताती रही, "अब वह पूरी तनख्वाह नही देते, थोड़े से इने-गिने पैसे चपरासी के हाथ भेज देते है, जिनसे पूरा घर चलाना पड़ता है। जब कभी ज्यादा मेहमान आ जाते है, तो पैसे उधार मांगने पडते है। और यहां के लोग ऐसे है कि देते भी नही। पिछली बार कई मेहमान आये थे, महीने का आखिर था, पास मे धेला नहीं था, तो अपना नेकलेस गिरवी रख चोरी से दो सौ रुपये मगाये थे।" उसे आश्चर्य हुआ, मा आगे कह रही थी—"उनका पैसा बाहर खर्च होता है। मेरे पास साडी फट जाती है, पर नही लाकर देते, और इस आया के लिए हर तीसरे-चौथे दिन नयी साडी आती है···" मा का स्वर रुक गया। उसे अचानक करेण्ट छू गया, वह झन्ना गयी···तो इस आया से भी ? वह देर तक पलकों पर आसुओं को बलपूर्वक रोकते हुए सामने रखे टेबिल के कपडे को मोडती रही।

वह मा को देखती—बिलकुल पति की तरफ से ऊबी हुई एक नारी जो सामने सब कुछ देखकर भी आंखे बन्द कर लेती है। जैसे सामने वाले से कोई संबंध न हो, कोई रिश्ता न हो। पहले तो मां ऐसी नही थी। कभी बाबूजी किसी औरत की तारीफ कर देते, तो मां आगबबूला होकर लड़ पड़ती और जब बाबूजी माफी मांगते, तब बोलती। पर अब मा ऐसी हो गयी है, जैसे चलती-फिरती पुतली। घडी की उस सुई की तरह जिसे मालूम है कि एक ही रफ्तार से चलकर बारह तक पहुंचना है। और सदा उसी रफ्तार से चलना है। मां को बाबूजी की एक-एक बात मालूम रहती है, फिर क्यो नही बोलती, क्यों नही टोकती ?

रोज रात को उसकी नीद उसी खटके से उचटती और वह रोज टार्च की रोशनी को नौकरो के क्वार्टरों मे खोते देखती। वह मा की तरफ देख रही है, वह जान-बूझकर आख मूदे हैं।

उसके जाने के दिन पास आते रहे, मां की उदासी बढ़ती रही। वह चुपचाप कमरे मे बैठी घर के वातावरण को समझने की कोशिश कर रही थी। हर बार उसे लगता, मा और बाबूजी को इसके पहले वह कभी नही जानती थी, पहली बार देख रही है।

मा आयी और लगभग फुसफुसाते हुए बोली, "देख, बेटा, इसे रख ले। तेरे बाबूजी कपडे बनवायेंगे, पर सिर्फ एक जोडा। मैं तुझे यह चुपचाप दे रही हू, उन्हे न बताना।" मां चली गयी। मा रो नही रही थी, पर उसे लगा, मा की आत्मा बोलते समय जरूर रो रही थी। उसने बंडल खोला—दो भारी साडियां और ब्लाउज थे। उसे अजीब लगा। मन बहुत भारी हो गया। उसे लगा, मा और बाबूजी के बीच बहुत बडी खाई है। तभी बाबूजी के कमरे से बूढे रामू की आवाज आयी—"बाईजी, आपके झुमके उसने रख लिये, पर वह कहता है, सौ से ज्यादा नही दूगा।"

"अच्छा-अच्छा, उतना ही ले आ।" यह मा का स्वर था। ओह, तो मा ने अपने झुमके दे दिये! उसकी इच्छा हुई, मां से पूछे कि उसने ऐसा क्यों किया, क्या वह इतनी परायी हो गयी है, पर उसके पैर वही जम गये। उसे लगा, वह घर उसके लिए अजनबी है, उसमे रहने वाले भी—और वह चुप ठगी-सी बैठी रही।

रात को बाबूजी को मालूम हुआ कि वह जा रही है, तो पहले उन्होने आश्चर्य प्रकट किया, फिर वह पहले की स्थिति में आ गए।

काफी रात गए बाबूजी ने एक मामूली-सी साडी और ब्लाउज लाकर उसे थमा दिया और बिना बोले, आंखें चुराये, बहुत थके-थके-से अपने कमरे की तरफ बढ़ गये। उसे दुख हुआ, बाबूजी के पास पैसे नही होंगे पर वह क्यों पैसे बरबाद करते हैं। उसने बिना मां को दिखाये जल्दी से कपड़ों को अटैची मे डाल दिया, मानो बाबूजी की पोल मां से छिपाना चाह रही

हो। मां ने कोई उत्सुकता नही दिखायी, जैसे जानती हो कि देखने से दुःख ही होगा।

सुबह जब वह नाश्ते की मेज पर आयी, तो मा के साथ बाबूजी को देख उसे आश्चर्य हुआ। उनका चेहरा उदास था। उन्होंने उसे अपने पास ही बैठा लिया। देर तक उसके सिर को सहलाते रहे, उसकी प्लेट में डबल रोटी, अण्डे के टुकड़े डालते रहे। उसकी समझ मे नही आ रहा था कि बाबूजी का कौन-सा रूप सच है !···शायद दोनो !

मा बहुत उदास दिख रही थी। लगता था, रात को बहुत रोयी है, इसलिए आंखें सूजी थी। होंठो पर पपडी जमी थी। मा चुप थी, शायद डर हो कि बात करने से रुलाई फूट पडेगी। वह भी मा से आखें चुरा रही थी। अपने दिमाग से जाने की बात को निकालकर कोई फिल्मी चुटकुले की याद में ध्यान बंटा रही थी, पर हर बार उसे वही महसूस होता था कि आज वह जा रही है और वह आंसुओं के वेग को रोककर फिर कोई बात सोचने लगती।

उसका थोड़ा-सा सामान गाडी में रखा जा चुका था। रेल का समय हो गया था। वह बाबूजी और मां के साथ गाडी मे बैठ गयी। गाडी जानी-पहचानी सडक पर दौड़ रही थी। वह खिड़की के बाहर देख रही थी। सब चुप थे···अपनी-अपनी दुनिया में खोये, जैसे जानते हों, आगे क्या होने वाला है, और सांस रोके आने वाले समय मे होने वाली घटना से सहमे बैठे हों। रास्ता बडा दूभर था। पन्द्रह मिनट का वक्त पन्द्रह युग की तरह बीता।

प्लेटफार्म पर गाड़ी खड़ी थी। बाबूजी ने जल्दी से डिब्बे में उसके लिए जगह बना दी थी। ट्रेन छूटने का समय हो गया था। मा और बाबूजी डिब्बे से उतरकर नीचे प्लेटफार्म पर खड़े हो गये। उसे रोना आ रहा था। लग रहा था यह पल रुक गया है। वह सोच रही थी, गाड़ी जल्दी क्यों नही छूटती, ताकि अच्छी तरह रो ले।

• गाडी खिसकी, मां और पिताजी की व्याकुल दृष्टि उस पर पड़ी, उसने धीमे से दोनों हाथ जोड़ दिये। गाड़ी सरक रही थी और वह दरवाजे पर खड़ी

हाथ हिलाते हुए दोनों को देखती रही, एक ही मोह में बंध हुए, एक ही वेदना मे तडपते हुए, पर···पर थोड़ी देर के बाद यह दोनो अलग हो जायेंगे···अपनी-अपनी सीमा में, अपने बनाये दायरे में, जो कभी नही टूटेगा !

वन्द कमरों की सिसकियां

किसी की मौतमे संवेदना प्रकट करने मोहल्ले-पड़ोस के लोग भी न आएं—यह कितनी अजीब बात लगती है और वह भी जगदलपुर जैसे छोटे शहर मे, जहां हर आदमी एक-दूसरे से गुथा हुआ है। जैसे कई अक्षरों के ऊपर लकीर खींचकर उन्हे जोड़ दिया जाता है, वैसे ही तो इस शहर का हाल है—कई अक्षरों को जोडती एक लकीर खिची है एकता की। फिर? फिर…?

यह 'फिर' बार-बार उसके दिमाग की स्लेट पर लिखता-मिटता है।

बीचवाले कमरे में लाश पड़ी है। 'लाश' कितना अजीब शब्द लगता है। कल तक जो उसका पति था, फूली-सी देह वाला, आज उसे ही लाश शब्द से सम्बोधित करना पड़ेगा, यह उसने कब सोचा था? शंकर को चादर से ढंक दिया गया है, आस-पास कोई नही है, कमरा खाली है।

लोगों की भीड़ से बचना, लोगों के घर नहीं जाना क्या अच्छा लगता था। पर क्या किया जाये? ऐसी कई कमजोरियां हुआ करती हैं जो लोगों के सामने निकलने नही देती। जब हम किसी के दुख-सुख में नहीं जाते तो लोग क्यों आयेंगे? लेकिन सम्बन्ध भी तो वही रखते हैं जिनके बाल-बच्चे हों, आगे लेने-देने का रिश्ता निभाना हो। दोनों का सीमित दायरा बन गया था। लोग सुना-सुनाकर कहते, "दोनों ने अपने चारों तरफ एक दायरा, एक लकीर खीच ली है।"

वह औरतों के बीच जाती तो ऐसे सलाम करती, जैसे कोई विदा कह रहा हो, और इसके आगे औरतों की हिम्मत उसके पास बैठने या बात करने की नहीं होती।

उस दिन बड़ी मुश्किल से वह गयी थी मिस्टर राय के यहां। औरतों की भीड़ के साथ जब वह मिस्टर राय के झूले मे बच्चे के पास शगुन करने गई तो उनकी सास ने टोक दिया, "अरे ! तुम नहीं, शगुन बच्चों की मा करती है।" उसकी छोटी-छोटी आखें सिकुड़कर रह गई थी। मन के भीतर कोई बड़े जोर की मथनी चला रहा था। कितनी चोट लगी थी इस घटना से और बांझपन का बोझ पहली बार उसके मन को दबाने लगा था।

रात-भर नहीं सो पायी थी, कितने विचार एक-एक करके आये थे। जब वह छोटी थी तो घर में उसके बाद कोई बच्चा नहीं हुआ था, इसका अभाव उसे खलता था तो पड़ोस के गन्दे बच्चो को दिन-भर टांगे रहती थी। खेल भी खेलती तो हमेशा मा बनती और छोटे-छोटे पत्थरो के लम्बे टुकड़ों को बच्चा बनाया करती। जवानी मे जब पहली बार सपने आये थे तो उसे याद है, किसी की प्रेयसी के रूप मे नहीं, बल्कि किसी बच्चे की मां के रूप में आये थे। जब उसकी शादी हुई, तो मां बनने की इच्छा जोरों से पछाड़ें खाने लगी, पर भाग्य की विडम्बना देखो कि पल-पल करते बीस साल बीत गए और वह ठूठ की तरह खड़ी-की-खड़ी रह गई। कोई कोपल नहीं फूटी, कोई फूल नहीं खिला। उसके साथ की औरतें जवान-जवान बच्चो की मां बन चुकी थीं।

कितनों ने कहा—गोद ले लो, पर आम कभी अमरूद के पेड़ पर फलता है ? जिसका फल, उसे ही सुहाता है, और बस, जिन्दगी खींच-तानकर एक चौखटे में फिट हो गई थी।

"दूसरी शादी कर लो।" उसने कितनी बार शंकर से कहा, लेकिन वह उसके चेहरे को उठाकर कह देता, "न-न, मुझे ऐसा बच्चा नहीं चाहिए जो हमे अलग कर दें।" और वह उसकी चौड़ी छाती में सिर छिपाकर फूट-फूट -कर रोने लगती।

छोटी-सी नौकरी ! वह भी क्लर्क की ! फिर भी कुछ-न-कुछ बचा ही लेती।

"मौना, किसलिए यह पैसा जोड़ती हो ?" कभी वह कहते तो वह ठगी-सी उन रुपयों को घूरती। सच, किस मोह मे वह पैसा जोड़ती है !

उस दिन वह जल्दी-जल्दी घर मे आये थे। वह उनकी पुरानी कमीज को रफू कर रही थी।

"मौना, मैंने बीमा करवा लिया है, मेरे मरने के बाद कोई तो सहारा चाहिए तुम्हे !"

वह भौचक्की-सी उन्हे घूरने लगी। पहली बार उसे लगा था—सच, वह अकेली है ! बिलकुल अकेली !

ऊपर के हिस्से मे छोटे देवर रहते थे, जिनकी शादी को चार बरस हो गये थे। वह दो बच्चों के बाप भी थे। वह सोचती थी कि चलो, देवर के बच्चो को ही प्यार करके जी हल्का करेगी, पर दोनों भाइयों में जरा नही पटती। छोटे देवर शम्भू दिखावा पसन्द करते थे, और यह शंकर के वश की बात नही थी। जब शम्भू के बच्चा हुआ तो उसे याद था, वह कितने खुश थे। बच्चे को दोनों हाथों मे पकड़े कितने प्रसन्न थे, "मौना ! मौना ! मौना ! देख ना, कितना भला है शम्भू का बेटा ! बिलकुल मुझ पर है ! है न ?"

उनके आफिस चले जाने के बाद वह और अकेली हो उठती थी। बे-मतलब इधर-से-उधर चहलकदमी करना, किसी चीज़ को इधर-से-उधर रखना। कभी-कभी वह सड़क की तरफ खुलने वाली खिड़की की सलाखें पकड़े मिशन-स्कूल के छोटे-छोटे बच्चों को नीली गाड़ी में भरे जाते हुए देखती। सुन्दर-सुन्दर, छोटे-छोटे, प्यारे-प्यारे बच्चे छोटी-सी गाड़ी में बैठे होते, मोड़ पर गाड़ी रुकती, मिसेज़ राय गाड़ी का दरवाजा खोले दोनों हाथों से अपने बच्चे को उठा लेती। क्या कभी यह गाड़ी उसके दरवाजे पर खड़ी नही होगी ? कितने प्रश्नचिह्न उसके जीवन में खड़े हो गए थे। एक-दूसरे से हाथ बांध, कतार में खड़े उसको क्या मुह नही चिढ़ा रहे ? खुद

वह आज तक प्रश्नचिह्न की तरह लटकी रही है। हर मोड़ पर प्रश्नचिह्न ईसा के सलीब की तरह उभर आता और वह ठिठक जाती।

जब शकर उसकी इन्ही पुरानी रटी-पिटी बातो से खीझ उठता तो कहने लगता, "जानती हो मौना, जिन्दगी और उसमें जीने वाले मनुष्य कितने बढ गए है ? तुम तो कल्पना भी नही कर सकती। बड़े शहरों का हर काम मशीनो से होता है—कपडो की धुलाई तक। ठड मे अंगठी पर आग तापने से भी आदमी बोर हो गया है और अब कमरे को गरम करने के लिए हीटर हो गया है। सोचो, दुनिया इतनी आगे बढ़ गई है, और तुम ? तुम हो कि आज भी मंदिर मे जडे ठाकुरजी को दुखड़ा सुनाती हो !"

पर ?···पर वह कहां दुखडा रोती है ? वह मन्दिर जाती है—पर कोई मुराद लेकर नहीं। बस, जी भारी हो उठता है तो मन्दिर चली जाती है, वरना जाये भी तो कहा ? पडोस की औरतो मे वह बैठना नहीं चाहती। जी ऊबने लगता है, तो मन्दिर चली जाती है और सीढियो पर घंटो बैठी रहती है। इसके जीवन मे जाने वे सीढिया कब बनेंगी जिनसे होकर वह उतर पायेगी ?

लगता ही नही कि यह घर किसी मरे का घर है। अभी तो कुछ घटे पहले यहा मौत हुई है, पर लगता क्यों नही ? क्या यह भी शकर की उस दिन वाली बात का अंश है—कि अब मरे का घर भी मरे का नहीं लगा करेगा।

कितनी अभिलाषाए थी उसके मन मे ! उस दिन दोनो दुकान गये थे। चार रुपये का एक हरा पर्स था। उसकी इच्छा थी कि वह पर्स ले ले, पर शकर की इच्छा नहीं थी, या जेब मे पैसे नही थे। बार-बार वह पर्स को उलटकर शंकर को देखती, "तो फिर कैसा है यह ?"

दुकानदार भी शंकर के भाव को ताड़ गया था और उसने पर्स उठाकर अन्दर रख दिया। उसका मुह कानों तक लाल हो गया—ओह ! वह जीवन-भर हर चीज़ को तरसती रहेगी ? और हर चीज उसे शो-केस मे रखी ललचाती रहेगी ?

दुकान के बाहर आकर उसने शकर से बात नही की। शकर उसके भाव को ताड़ गया था और देर तक पर्स की बुराइयों का विवरण देता रहा था। अगले दिन दूसरी दुकान मे पर्स ला देने का आश्वासन भी देता रहा, पर वह जानती है, ईश्वर ने उसके भाग्य की हर लाइन के साथ जोड़ दिया है, 'आज नही, कल !' जैसे हर दुकान मे तख्ती लटकती रहती है, 'आज नकद, कल उधार !' और सब ग्राहक जानते हैं कि यह कल कभी नही आता, कभी नही !

इधर वह देख रही थी, शंकर बूढ़ा होता जा रहा है—मन से भी, तन मे भी। उसके चेहरे पर दिखती सिलवटें उसके सामने जैसे डैश-डैश के चिह्न छोड़ जाती।···कभी-कभी वह अपने भविष्य से घबरा उठती।

जिन्दगी भर उसको ढाढस बंधाने वाला शकर मरने से एक दिन पहले खुल गया था। अचानक उसे अपनी बांहो मे कसते हुए कहा था, "मौना ! जाने ऐसा क्यों लगता है कि हम दूर होते जा रहे हैं, दो किनारो की तरह, दो छोरो की तरह ! इन दो को जोड़ने वाला वह पुल, वह बधन कहा है ? मौना, अब अपने जले हुए तन को सुन्दर कपडों से ढककर जिया नही जाता। यह एक लाइन मे गुथी ज़िन्दगी अब नही जी जायेगी, मौना···!" आगे भी शंकर जाने क्या-क्या कहता रहा था, पर उसके कान बहरे हो गए थे, पलकें मुद गई थीं, "हे भगवान ! इसी दिन की तो वह राह देख रही थी जब खुद शंकर इस नीरसता को समझने लगे। पर उसके मन की बात जब सामने आयी, तो उसका मन क्यो घबरा रहा है, किस आशंका से ?"

उसी दिन शाम को अचानक शंकर ने उसे घूरकर उससे कहा था, "मौना, मैं देख रहा हूं तुम्हारा चेहरा खिच-सा गया है, जैसे चादर तान दी गई हो। क्या बात है ? तुम सब काम मशीन की तरह क्यों करती हो ? क्या जीवन मे कोई लालसा नही है ?"

रात को अचानक उसके आफिस के साथी ने कुण्डी खटखटायी थी। उसने सधे कदमों से दरवाज़ा खोला था। "भाभीजी, शंकर···शकर का एक्सीडेंट हो···" वह वैसी खडी रही, बिना विचलित हुए। इधर जाने

क्यों, कई दिन से इसी बात की आशंका उसे होती थी। इस दिन की आहट को वह बहुत पहले सुन चुकी थी।

अस्पताल की सीढ़ियां उतरते हुए भी उसे कुछ नहीं लग रहा था। वह बेजान पत्थर की मूर्ति की तरह एक-एक कर सीढ़ियां नापती उतरती रही थी। क्या वह ठाकुरजी के मन्दिर की सीढ़ियों पर बैठी इन्हीं सीढ़ियों की कल्पना करती रही थी? उसका मन अपने प्रति घृणा से भर उठा।

शंकर का शरीर जब गाड़ी से घर मे उतारा गया तो शम्भू उसके पत्थर-से चेहरे को देखकर रो उठा, "भौजी, इतनी कठोर न बनो, भैया के प्रति रोते नहीं बनता तो कम-से-कम एक ठंडी सांस-भर तो ले लो!"

पर उससे ठंडी सास भी लेते नही बना था। उसे खुद आश्चर्य हो रहा था—जिसे वह आत्मा से ज्यादा प्यार करती थी, जिसके दुख-सुख मे साथ रही, आज उसी की मौत पर रोने के लिए आंसू नहीं हैं। पर क्यो? क्या इसलिए कि शंकर ने उसे ज़िन्दगी भर न मरने दिया, न जीने दिया, बस कैद करके रखा और अब खुद सब छोड़कर, धीरे से पीछा छुड़ाकर सरक गया।

ज़िन्दगी इतना सच्चा सत्य उगलेगी, दोनों ने कल्पना तक नही की थी। दोनों के बनाये दायरे दोनों को ही जकड़ लेंगे, कभी सोचा न था। क्या कभी शंकर ने सोचा होगा कि वे दोनो, जो किसी के घर नही जाते, किसी से नाता नही रखते, एक दिन खुद उन्हे तकलीफ देगा, और वह भी इतनी जल्दी! जैसे सरकार को नया संविधान बनाये दो दिन भी न हों और अपने संविधान मे ही फसकर सरकार उलट जाये, जैसे सुकर्णो! क्या उसने कभी सोचा था कि उसका शासन खत्म हो जायेगा···?

ओह! वह भी कितनी मूर्ख है! कहां-से-कहां भटक गई। वह बार-बार कल्पना करती है कि शंकर को अभी ले गये हैं जलाने। और उसे रोना है, रोना चाहिए, पर न जाने क्यों उसका मन इस बात को सोचता ही नही और भटक जाता। बिलकुल ऐसे ही, जैसे जाना-पहचाना घर हो, घर के सामने नेम-प्लेट हो, फिर भी आने वाला घर के सामने से भटकता गुजर

जाये और गलियों में भटकता फिरे, यह भूलकर कि जिस घर को ढूढ रहा है, उसके सामने से कई बार निकल आया है। लोग उसकी चुप्पी को पागलपन का पहला दौरा समझ रहे हैं।

"दीदी, लोग लौट आये है।"

"कहां से ?"

"...श्मशान से। और कहां से ?"

"ओह !" और वह चुप हो गई। देवरानी भय से पीछे हट गई। एक पत्नी को उसके पति के जलाने की खबर सुनाने पर भी वह न रोये !

वह सोच रही है, "कैसे जल गया होगा शंकर का शरीर ? लाश श्मशान तक कैसे ले जा पाये होंगे, क्योकि मौत मे तो सिर्फ इक्का-दुक्का ही लोग थे ?"

दोनों भाई, जो जीवन मे कभी नही मिले, साथ बैठकर सुख-दुख नही पूछा, उसी दूरी को मौत ने कैसे पाट दिया ? शम्भू ही सारी दौड़-धूप कर रहा है। मुंह-अंधेरे ही एक-एक परिचित के दरवाजे को खटखटाकर भाई की मौत की खबर दे आया था। इतनी सूचना पर भी कोई नही आया था। बन्द कमरों की दीवारो मे ही शम्भू, उसकी पत्नी और बच्चो की सिसकियां घुटकर रह गई थी। मरने वाले के घर संवेदना प्रकट करने कोई न आये तो अकेले रोते रिश्तेदार भी चौककर चुप हो जाते है। यही हाल यहां हुआ। थोड़ी देर में ही धीमी-धीमी सिसकियां बन्द हो गई। देवरानी दोनो बच्चों को लेकर पीछे दालान मे मुह धुलाने ले गई थी। वह नही देखकर भी सब देख रही थी और...और इन्हीं सब बातो पर उसका कलेजा पत्थर हुआ जा रहा था।

चाहे कुछ हो, समय नही रुकता, और सोचो तो आश्चर्य होता है। शंकर को मरे दो दिन हो गये। कभी शंकर नाम का कोई था भी या नही, इस पर भी शक होता है। विश्वास नही होता कि किसी की मौत के बाद दो बार सूरज डूबकर निकल सकता है। दो दिनों की असफल कोशिशो के बाद भी उसे रोना नही आ रहा था। देवरानी ने नाक सिकोड ली थी।

शम्भू शक से घूरने लगा था, कहीं बुढ़ापे में भौजी ?···और वह इन सबसे अनजान चुप पड़ी थी।

और दस दिन बाद जब वह आंगन में बैठी चुपचाप आसमान को तके जा रही थी कि शम्भू आया। "लो भौजी, इन कागजात पर दस्तखत कर दो, बीमा-पॉलिसी के हैं।" शम्भू के हाथ में रखे बीमा-पॉलिसी के कागजों को वह भौंचक्की-सी घूरती रही। उसका मन भर आया, और दूसरे ही क्षण वह फर्श पर पछाड़ें खा-खाकर रो रही थी।

चमड़े का खोल

स्टेशन पर किसी के आने की उम्मीद थी, क्योंकि उसने बाबूजी को पत्र लिख दिया था कि वे लोग आ रहे है। उसने दूर से ही खड़े राकेश को देख लिया। राकेश को देख उसका मन प्रसन्नता से भर गया। राकेश पास आ गया था।

रिक्शा से घर की ओर जाते हुए उसने राकेश को देखा जो बीच-बीच में साइकिल की रफ्तार कम करके देव से बातें कर लेता था। जो बात काफी देर से मन मे घूम रही थी, आखिर होंठों पर आ गई।

"बाबूजी हैं या नहीं ?"

"नही, वह तो गांव चले गये है।"

"क्यो ? क्या मेरा पत्र उन्हें नहीं मिला था ?"

"मिल गया था, पर खेती का काम शुरू हो गया है न ! बाबूजी कह गये है, समय निकालकर आयेंगे।"

उसके मन में कुछ खटक गया। अब तक जो प्रसन्नता से वह भरी थी, लग रहा था, वह फीकी पड़ गई है। रास्ते भर देव और राकेश बातें करते रहे। राकेश लम्बा हो गया है, यह उसने महसूस किया।

घर के दरवाजे से बहुत आगे सडक पर खड़ी मां बेचैनी से उनका रास्ता देख रही थी। मा को देख उसका मन भर आया—कितनी दुबली लग रही थी, मानो हड्डियों के ढांचे पर चमडे का खोल चढा दिया गया

हो। छोटे-छोटे वाक्यो के बाद रिक्शा आगे बढ़ा। देव उतरकर मा के साथ चलने लगा, पर वह खुद सामान के बीच फसी बैठी रही।

"कितनी दुबली हो गई है शुभी?" मा ने उसकी प्लेट मे दुबारा चावल डालते हुए कहा।

"कहा दुबली हो रही हू? तुम्हें तो ऐसा ही हमेशा लगता है, कितनी मोटी हो गई हूं।"

"जैसे मेरे आखें नही है न?"

"हा, यह तो एकदम कांटा हो गई है, फैशन भी तो चल पड़ा है न!" देव ने उसे छेड़ते हुए कहा।

"हा फैशन, जैसे मैं फैशन की दीवानी हू न! मा के सामने दुबली बोल रहे हो, वहां तो मोटी हो गई कहते हो।"

"टॉनिक लिया कर न, बेटी।"

"मा, तुम्हे तो खामख्वाह गलतफहमी हो गई है कि मैं दुबली हो गई हूं। तुम खुद दुबली हो गई हो, इसलिए तुम्हे सब दुबले नजर आ रहे हैं।"

सबकी मिली-जुली हंसी से घर गूज रहा था। उसे बाबूजी की कमी खटक रही थी। राकेश उसकी लायी हुई मिठाई खा रहा था।

"मां, थोड़ी बाबूजी के लिए भी उठाकर रख दो न।"

"तुम लोग तो खाओ, जैसे तेरे बाबूजी के आने तक मिठाई रुकी रहेगी, कब आते है कब नही।" मां ने बिस्तर लगाते हुए कहा। उसे लगा, मा को बाबूजी के आने मे शक है।

कमरे मे वही जानी-पहचानी चीजें थी जिन्हें वह बचपन से देखती आ रही है। वही सील खाते हुए कमरे, कोने-कोने में समाया हुआ सन्नाटा जैसे अपने-आप चौका जाता। दीवार पर वही पुराना-सा पुराने फ्रेम में जड़ा दो छोटे-छोटे बच्चो का चित्र, जो किसी पुस्तक पर झुके कुछ पढ़ रहे है। पहले कई लोग इसे उसका और राकेश का चित्र समझ लेते थे, फिर राकेश को देख उनकी गलतफहमी दूर होती थी, क्योंकि राकेश उससे ठीक चौदह वर्ष छोटा है। जाने कितनी मन्नतों के बाद मा को पुत्र मिला

था। राकेश के पैदा होने के पहले ही मां को दमे की बीमारी हो गई थी और बाबूजी नयी मां के साथ गांव में रहने लगे थे।

उसने व्याकुल होकर 'सारिका' का नया अंक उठा लिया। मुखपृष्ठ पर किसी युवती की मूर्ति की प्रतिमा का चित्र था। चेहरा पूरा पत्थर का था, पर गाल मे टिका हाथ जीवित मांस का था। यह चित्र कैसे लिया गया होगा क्योंकि दूसरे का हाथ होता तो अंगूठा गाल से नही टिकता। क्या इसका चेहरा किसी के श्राप से पत्थर का हो गया? उसके सारे चेहरे पर जले हुए-से दाग थे।

बरामदे में मां जाती दिखी, वह मा के चेहरे से उस चित्र की तुलना करती रही। मां भी तो ऐसी हो गई है।

"दीदी, तुम आने वाली हो, यह सोचकर मा ने अनरसे बना रखे है।" राकेश उसके पास आकर कहता है।

"सच!" वह खुश होने का अभिनय करती है।

उसके लौटने मे सिर्फ एक दिन बचा है। उसने पहले ही बाबूजी को लिख दिया था कि वह सिर्फ तीन दिन के लिए आ रही है, क्योंकि देव की छुट्टियां घूमने में बीत गई। आज सबको उम्मीद थी कि बाबूजी आयेंगे। उसने अपने हाथों गाजर का हलवा बनाया था। दो-तीन बार मा कह चुकी कि, "खा लो, कब तक रास्ता देखोगे!"

पर वह शाम तक उनका रास्ता देखती रही। अन्त मे उसे निराशा ही हुई। उसे बार-बार लगता रहा, मां कुछ कहते-कहते रुक जाती हैं और उसके पास से उठकर चली जाती है। मा क्या कहना चाहती है—वह सोचती रही। बचपन मे ही तो इस घर के वातावरण मे वह जीती रही है। जब-जब वह बाबूजी के न आने की बात उठाती, मा कुछ कहते-कहते रुक जाती और उसके लिए वह क्षण भारी हो उठता। उसे लगता, जरूर कही दरार है जो वह नही देख पा रही है।

उसे अंग्रेज़ी की पढ़ी कविता याद आ गई, जिसका मतलब था—शाम को किसी प्रिय की याद करना वैसा ही है, जैसा सड़क के किनारे खड़ा

अकेला गुलमोहर अपनी नंगी टहनियों का बाझपन याद करके रोये।

उसे बचपन की कितनी घटनाएं याद हैं। एक बार घर पर काफी लोग जमा थे और बाबूजी ने उसे बुलाया था, तब वह केवल दस साल की थी।

"शुभी, अपनी नयी मां को पसंद करेगी।"

वह डर से सफेद पड़े चेहरे से बाबूजी को देखती रही। क्या बाबूजी हंसी कर रहे हैं? बाबूजी के दुबारा कहने पर वह धरती को देखती सुन्न-सी खड़ी थी। टप-टप आंसू बहकर होंठों पर नमकीन स्वाद भर रहे थे, पर उसमें हाथ उठाकर आंसू पोंछ लेने का भी साहस नहीं था।

"बच्ची को क्यों रुलाते हो, भला वह क्या..." किसी ने कहा और बाबूजी चुप हो गए। वह भयभीत-सी बाहर आ गई थी।.

जुलाई के अन्त के दिन जैसे वातावरण को और मौन दे गये। चारों ओर गुलाबी कुहरा था। ढेर फूलों के ढके वृक्ष मौन खड़े थे मानो किसी बहुत बड़े आदमी के शव को मौन श्रद्धांजलि दे रहे हों। गीली टहनियों पर दोपहर अपने सूखे होंठ रखे फड़फड़ा रही थी। वह अनजान-सा पक्षी टहनियों में अपने को छिपाने की भरसक कोशिश कर रहा था। बीमार सुबह का टीस देता। क्षण दोपहर में बदल चुका था, पर फिर भी सुबह का धोखा हो रहा था।

मां पान के पत्ते पर कत्था-चूना लगाते हुए बीच में उसे इस भाव से देख लेती है मानो कह रही हो—मैं जानती हूं शुभी, तू पुस्तक पढ़ने का बहाना कर रही है।

आखिर जिस बात से वह डरती है उसी बात को मां ने छेड़ दिया, "बरसात में इस मकान में कितना कष्ट होता है, शुभा। मेरा क्या है, मैं कुछ दिनों की साथिन हूं, मेरे बाद राकेश को देखने वाला कौन है? कहती हूं एक मकान बनवा दो, पर सुनते ही नहीं, जैसे कहने-सुनने का अधिकार ही चुक गया हो।"

"मां, तुम क्यों बेकार मकान-मकान चिल्लाती हो? जो हो नहीं सकता, वह बात कहकर घर में झगड़ा करने में फायदा?" उसने बहुत

खीझे हुए शब्दों में कहा।

"जी दुखता है, शुभा, सारा जीवन तो तेरे बावूजी दूसरो के पीछे भागते रहे। जवानी आदमी और बच्चों को समेटने मे बीत गई, तब से भी मूल तो नही पर सिर्फ ब्याज ही हाथ लगा। अब बुढापा दूसरो की ओलती में कटे, यह नही देखा जाता।" मां ने पान के डिब्बे को पलग के नीचे खिसका दिया और लेटती हुई बोली, "इनका क्या है, महीने मे एक हफ्ता यहां रहते हैं, सारा घर का सामान घेरकर चले जाते हैं, हाथ-खर्चे को कुछ रुपये दे जाते हैं, वह भी किसी दिन बन्द कर देंगे तो हम मां-बेटे को आत्महत्या की नौबत आ जायेगी।"

"नही, बाबूजी ऐसा नही कर सकते, यह सब तुम्हारा वहम है। जो अब तक ख़याल करते आये हैं, क्या बाद में नही करेंगे ?"

"तू नहीं जानती शुभा, पिछले महीने तक हमारे कब्जे मे चार कमरे थे, जिनका पैंतीस रुपया किराया हम बरसो से देते आ रहे थे, इस बार तेरे बावूजी आये और मकान मालिक से कहकर दो कमरे खाली करा दिए। मैंने जब विरोध किया तो कहने लगे, 'यहा तुम दो मां-बेटे ही तो रहते हो, चार कमरे क्या करोगे ?' अगर ऐसा ही उनका दिमाग रहा तो कल हम कहा जायेंगे ? अब दो कमरो का सोलह रुपया देना पड़ रहा है।"

वह चुपचाप पडी रही, मा की बातें उसे घोंट रही थी। दूसरे कमरे में देव अपने ट्रांजिस्टर पर चाद मे लौटते हुए चन्द्र-यात्री के बारे मे कमेण्ट्री सुन रहा था, बीच-बीच में राकेश ख़ुशी मे चिल्ला उठता।

उसके मन में आया, मा से कहे, *"लोग चाद पर जाकर लौट रहे हैं* और तुम रहने की जगह ढूढ रही हो ?" उसे याद आया, सुबह देव बता रहा था, किसी विदेशी महिला ने कहा है कि चाहे जितना पैसा ख़र्च हो, पर मेरी हड्डियों को चाद पर दफनाया जाये।

ऐसे ही *दो-चार लोग कहने लगे तो क्या चांद को कब्रिस्तान बना* दिया जायेगा ? ठीक भी तो है, धरती पर लोगो को जीने के लिए जगह

नही है तो मरने के लिए कहा होगी? चांद और कब्रिस्तान! उसे अजीब-सा लगा, वह मन में चाद की दूरी और मौत की दूरी को जोडती रही।

सब पडोस के घरो से रेडियो पर कमेण्ट्री की आवाज आ रही है। वह पेपर उठा लेती है जिसके मुखपृष्ठ पर मोरारजी देसाई के त्याग-पत्र देने की सूचना छपी थी। उसने मुड़कर मा को देखा, वह लेटी हुई कुछ सोच रही थी। मोरारजी ने त्याग-पत्र दे दिया। लोग चाद पर पहुच रहे है और भारत में आपसी झगडे ही चल रहे है।

अस्पताल से लौटकर मां थकी-सी बैठी है। उसके चेहरे को देख लग रहा है कि जैसे उन्हे कोई दुख सता रहा है। अधूरेपन का बोध मा को शायद हमेशा रहा, पर उसे सहने की शक्ति जैसे अब उनमें नही रही। आज तीस साल के कठिन वैवाहिक जीवन के बाद भी वह अकेली ठूठ-सी खड़ी थी। जवान बच्चो के सामने अपने-आपको दो फांक की तरह चीरा हुआ पाकर अजीब लग रहा था शायद।

"मा, तुमने खाना नही खाया?"

मां उसके प्रश्न को जैसे नही सुनती, अपने मे ही खोयी-सी बोलती है—"तेरे बाबूजी नही आये?"

मा के शब्दो का टूटापन उसे खटकता है—"कोई काम रह गया होगा।"

"नही बेटा, जान-बूझकर न लौटने वाला आदमी हमेशा चूक जाता है। क्या वह उस दिन भी ऐसे ही चूक जायेंगे?" लगता है मां अपने आप प्रश्न करके कुछ खोज रही है।

वह जानती है, बाबूजी जान-बूझकर नही आये है। उसके लिए उनके मन में कोई दर्द नहीं है। पिछली बार जब वह आयी थी तब मां ने कपड़े बनवाने को बाबूजी से कहा था तो बाबूजी चिल्ला पडे थे, "मैं कहां से लाऊ? शुभी की मां, तुम क्या पुराने ढकोसले अपनाती हो! कपड़े पहली दफा बेटी आये तो बनने चाहिए, हमेशा नहीं। तुम हिन्दुस्तानी औरतें पुरानी रस्मों को लिये ही चिता पर चढ़ोगी...बाहर विदेशों में देखो!"

"चुप रहो, वह सुनेगी तो क्या सोचेगी। तुम जाने कैसे कसाई बाप हो जो बेटी को एक जोडा कपड़ा देते हुए भी छाती तडकती है।"

वह अंधेरे मे सब सुनती रही थी। वह बहुत बेचैन हो गई थी। एकाएक उसे लगा था, शादी के बाद भी वह बाबूजी पर भार है, कपडा देना पडता है इसलिए बाबूजी उसके आने पर खुश नही होते; जैसे उसके और बाबूजी के बीच मे कपड़े की दीवार है।

बाबूजी जानते है, उसके आने से उन पर बेकार को बोझ आ जाता है और घर मे विवाद खडा हो जाता है, घर की अशान्ति अलग बढ़ती है और शुभा के मन मे बाबूजी के प्रति विरोध का भाव आ जाता है। इसीलिए इस बार कन्नी काट गये। वह आयेंगे ही नही तो कहा से मा कपडो का प्रश्न खडा करेगी। सब अपने-आप निपट जाएगा और उनके खिलाफ कोई विरोध का भाव लिये शुभा नही जायेगी, क्योकि सब जानते हैं, देहात का मामला है और बरसात में तकलीफ होती है।

जाने कहा से निकालकर मा उसकी मुट्ठी मे रुपये भर देती है। "शुभा, तेरे बाबूजी तो नहीं आये। मेरे पास ये रुपये हैं, अपने मन की साडी ले लेना।"

"रहने दो न मां, जरूरी है क्या? नही, मैं नही लूगी।" वह विरोध करती है पर लगता है वह ज्यादा नही बोल पायेगी और रो देगी।

"तुझे मेरी कसम है, शुभा, रख ले।" मा उसके जिद्दी स्वभाव को जानकर बोलती है।

"बाबूजी आयेंगे और राकेश को फुसलाकर पूछेंगे, तब क्या कहोगी? बेकार घर में झगड़ा होगा।" उसकी आंखो में पीड़ा उभर आयी।

मा उसके भाव को ताड़ जाती है, "तू क्यो चिन्ता करती है, मेरे जीते-जी इस घर में तेरा हक है। तेरा हाथ पकड़ने वाला कोई नही है। आंख रहते मैं अपने बच्चो को परायापन महसूस नही होने दूगी—मरने के बाद क्या होगा मैं जानती हू, तेरा मायका मेरे दम भर तक ही है, फिर तू अपनी गृहस्थी मे रम जाना। तू चिन्ता मत कर, मैं अपनी चमड़ी के भी

कपड़े बनवाकर अपने बच्चों को पहना सकती हू ।"

वह बहुत मुश्किल से अपने आंसू मां के सामने संभाले रही, वह मां के सामने रोना नही चाहती थी।

तांगे पर बैठे सब स्टेशन जा रहे है। मां के चेहरे से लगता है वह जान गई है कि बाबूजी जान-बूझकर नहीं आये। उसे लगता, बाबूजी ने जान-बूझकर उसकी अवहेलना करके उसका अपमान किया है।

"शुभा बेटा, मन में कोई बात न रखना, न दामाद को कुछ सोचने का मौका देना। तू तो जानती है अपने बाबूजी को। मन मे कुछ न रखना, मेरे जीते-जी मायका न छोड़ना...!" मा बार-बार उसके कन्धे पर हाथ रखकर कहती है।

ट्रेन आ गई है पर छूटने में समय है। सामान रखकर देव राकेश के साथ पान लाने जाता है। दोनों प्लेटफार्म पर खड़े है। प्लेटफार्म पर ज्यादा भीड नही है। जिस डिब्बे मे उनका सामान है वहां खिडकी के पास एक लडकी बैठी है, शायद नयी-नयी शादी हुई है।

लडकी डिब्बे में बैठी है और उसका बाप खिडकी के पास खड़ा है, बार-बार बेटी को चेतावनी दे रहा है, "बेटा, जाते ही पत्र लिखना, घबराना नही, मैं जल्दी ही लेने आऊंगा।"

एक आठ साल का लडका डिब्बे पर चढकर बार-बार अपनी बहन को देख लेता है और कहता है, "दीदी, अबकी बार आओगी तो पिस्तौल जरूर लाना !" फिर बाप की ओर मुड़कर कहता है, "पिताजी, अब दीदी कब आयेगी ?"

बाप और लडकी दोनो हंस देते हैं। मा की आंखें उधर ही है। वह बड़े मुग्ध भाव मे सब देख-सुन रही है। वह इधर-उधर देखकर अपनी घबराहट को छिपाने की कोशिश करती है, और मां को ऐसा जताती है मानो वह कुछ नही देख रही है।

वह डिब्बे मे बैठने लगती है, उसके साथ मां भी आ जाती है। उसके लिए क्षण-क्षण भारी हो उठा है। मां उस लडकी के पास चली जाती है।

"बेटी, तुम मायके आयी थी ?"

"जी हां, हमेशा दो-चार माह में आ जाती हूं।"

"अच्छा, मेरी लड़की भी जा रही है, तुम दोनो का साथ रहेगा।"

मां की बातें उसे बेतुकी लग रही हैं। मन में खीझ बढ़ती जा रही है।

"आइये न, यहा बैठ जाइये।" वह लड़की उसे पास बैठने के लिए कहती है।

"हां-हां, बैठ जाओ शुभा, यह भी ससुराल जा रही है।"

अब उसके लिए असहनीय हो उठता है। तभी राकेश और देव आ जाते हैं।

"मैं बैठ जाऊंगी मां, तुम उतरो, गाडी छूटने वाली है।"

मां उतर जाती है। ट्रेन खिसकने लगती है। दोनों परिवारों के लोग डिब्बे के पास सिमटे-से खड़े है।

वह मां की आंखों में तैरते पानी को देख लेती है। शहर पीछे छूटने लगता है। मां का रोता चेहरा आंखो के सामने रहता है। कच्ची पीड़ा उसे चीरने लगती है।

देव उसके सामने बैठा है। दोनों चुप है, जैसे बोलने के लिए कुछ नही है। छोटे-छोटे कई स्टेशन आते है और चले जाते है, पर वह देव से आंखें बचाये खिड़की से बाहर देखती रहती है।

शायद कोई छोटा-सा स्टेशन था। जामुन बेचने वाले, और लइया-करारी बेचने वाले इधर-उधर घूम रहे हैं।

"विदेशों में अच्छा रहता है, कोई किसी से बंधा नहीं रहता। अपने यहां मायके जाने का सिस्टम बहुत बुरा है, बन्द कर देना चाहिए, है न ?" वह अचानक बोलती है।

"क्यों ?" देव उसे बहुत चकराये हुए ढंग से देख रहा है।

देव का कहा 'क्यो' उसके सामने घूम जाता है और वह जवाब नही दे पाती। लगता है वह इस 'क्यो' का उत्तर कभी नहीं दे पायेगी।

उसका घर

बाल्टी के कुए मे गिरते ही पानी पर जोर से थप की आवाज़ होती है। बिना पानी से बाल्टी खीचे, रस्सी पकड़े ही कल्लो पीछे घूमकर उसकी तरफ देखती है, "तीन बार हुक्का भर चुकी, कितना पियोगे? जित्ते की तो जान बाकी नहीं उत्ता हुक्का पी जाते हो।"

वह वही परछी के एक कोने मे बैठा अपराधी की तरह सिर झुका लेता है। चोरी से कल्लो को देखता है। वह सर्र-सर्र बाल्टी खीच रही थी, एक पैर कुएं की दीवार पर, एक नीचे और वह बडी फुर्ती से पानी खीचकर घडे मे डाल देती है। खाली बाल्टी को पकड़े फिर उसे घूरती है, "मैंने कहा, सो जाओ, सुना नही?"

वह बड़ी विवशता से उसे देखता है। सिर हां मे हिलाता है। एक बार अपनी अधूरी अंगुलियों को अपने खुले पैर पर फेरता है और गमछे से आंख का पानी पोंछता है जो निरन्तर चलता ही रहता है और गमछे को सिरहाने रखकर लेटता है। खटिया कितनी ढीली हो गई है। चादर से भी सड़े प्याज की दुर्गन्ध उठ रही है, बिना खोल के तकिए पर सिर का निशान बन गया है, और उससे अजीब महक उठती है, पर कल्लो का खयाल आते ही फिर लेटकर चोर की तरह उसे देखता है। कल्लो आंगन में नही है। सन्तोष से ठंडी सांस लेता है, "ओह, अब इससे डरना पड़ता है, धर्मपत्नी न हुई, साली हवलदार हो गई!"

करवट लेकर आगन में देखने लगता है; तुलसी का झाड कितना बढ़ गया है, कुम्हड़े की बेल भी मुडेर से नीचे लटक आयी है, कुएं पर अभी-अभी पानी खीचने से खूब-सा कीचड़ हो गया है ।

बड़ी बहू चाय के प्याले धो रही है। सावले रंग की दूर तक खिची माग में लाल सिंदूर धधक रहा है और माथे पर लाल बिन्दी टिकी है। हरे किनारे की धोती पहने अच्छी लग रही है। कितनी सहजता से बिना सिर पर पल्ला लिये, बिना झिझक प्याले धो रही है, नही तो पहले उसके सामने आते ही झट घूघट निकाल लेती थी ।

"बहू, क्या चाय बनाई थी ?" ललककर पूछता है ।

"कहां, वह तो सिर्फ उनके लिए बनाई थी।" और धुले प्यालो को समेटकर अन्दर चली जाती है ।

उसे दुख होता है, बहू के हाथ मे तो पाच-छ. प्याले थे !

शाम धुधली हो रही थी, चिराग शायद चला दिये गये थे, क्योकि जाफरी से हल्की रोशनी आ रही है। तभी झन्न से बघार छोड़ने की आवाज आती है और सौंधी खुशबू वातावरण मे फैल जाती है। उसके होठ खिच जाते है, आज क्या पक रहा होगा ? शायद आलू ? नही-नही, खुशबू से तो गोश्त पकने का आभास हो रहा है। अपने सूखे पपोटों पर जबान फेरता है, पेट मे जोर से भूख उमठने लगती है। बेचैन-सा बीच के दरवाजे को ताकने लगता है कि रोज की तरह कल्लो हाथ मे थाली लिये आये—अरे, अभी तो चिराग जला है, अभी से खाना कैसे मिलेगा ? सच, बुढ़ापे में दिमाग चल गया है ।

वह भूख को भुलाने के लिए लाठी के सहारे उठ जाता है ।

"अब कहा चल दिये ?"

ठिठककर ताकता है। दीवार के कोने मे कल्लो पान बनाती बैठी है, "जरा यू ही सड़क तक हो आऊं," और बिना उत्तर की प्रतीक्षा किए वह दालान मे आ जाता है। पीछे से कल्लो की गुस्से से पान की पिटारी बन्द करने की आवाज आती है ।

सडक के लैम्प जल गये हैं। मूगफली और चना जोर-गरम वाले जोर-जोर मे चिल्ला-चिल्लाकर अपना माल बेच रहे है। सड़क पर अब तक बच्चे बाटी और कबड्डी खेल रहे है। सामने की बत्ती बुझी है, शायद खराब हो। वह गौर से देखता है, कोई चढ़कर ठीक कर रहा है। औरतों की कतार पानी का गुड लिये आ रही है। घर-घर जले दीयो की रोशनी टाट के परदो को लाघकर बाहर झांक रही है।

सामने कल्लू की लड़की बकरियां बाध रही है, "सलाम, चाचा !"

"सलाम, बेटी, सलाम !" वह सल्लो को देखता है। जवान हो रही है। उसके शरीर से बचपन की गध मे एक नयी प्रकार की गंध समा रही है। कल्लू के घर के पास से बकरियो के दाने, पेशाब व उनकी शरीर से मिली-जुली दुर्गन्ध उठ रही है।

वह धीरे-धीरे बढ़कर पुल पर बैठ जाता है। सामने बत्ती के नीचे खोचे वाला चना बेच रहा है। बच्चे चने ले रहे है। चना देख उसकी भूख बढ जाती है। कमीज की जेब टटोलता है, शायद कुछ हो—और आखिर मे छ पैसे मिल जाते है, जो कल कल्लो के खाना देते समय उसके ब्लाउज की जेब से गिर गये थे, जिन्हे उसने चुपचाप आख बचाकर उठा लिया था। उसका चेहरा खिल जाता है। लाठी को कस लेता है और घर की तरफ देखता है, कोई देख तो नहीं रहा ? जब इतमीनान हो जाता है तो चनेवाले के पास से एक दोने मे चने लेकर वहीं पुलिया पर बैठ खाने लगता है—कितना अच्छा बना है। तबीयत और खाने को होती है।

"बापू !"

"बापू !"

उसके हाथ का दोना गिर जाता है। सहमकर अपने बड़े बेटे लच्छू को देखता है। लच्छू की आखो मे गुस्सा उतर आता है।

"शरम नही आती, यहां बैठकर खाते हो—मेरी इज्जत का भी खयाल नही।"

वह बड़ी करुणा से भरा उसे देखता है कि मुझे माफ कर दे।

"चलो घर।" वह उसके पीछे-पीछे अपराधी-सा चलने लगता है। वह सीढ़ियां ही चढ़ रहा था कि अन्दर से बेटे की आवाज गूंजती है—

"बापू को बाहर किसने जाने दिया?" सब लोग दालान में सिमट आते हैं। वह अपने बचाव के लिए कल्लो को उम्मीद से ताकता है, पर वह उसे देखते ही फूट पड़ती है—"तुम्हें बाहर जाने की क्या जरूरत पड़ गई थी? चुपचाप खटिया पर बैठते नहीं बनता?"

"वह तो जरा-सा दिल घबरा गया था, घूमने चला गया।"

"हां-हां, घर तो तुम्हें काटने दौड़ता है, जरा मेरी इज्जत का तो ख़याल किया करो, अपनी अधूरी अंगुलियां से क्या चना चाट रहे थे?"

वह गुस्से से खाली बर्तन की तरह झनझना जाता है।

"मैं···मैं···" मगर उसकी आवाज साथ नहीं देती और कांपकर रुक जाती है।

"गुस्सा तो यूं कर रहे हो बापू, जैसे हमें कमाकर खिला रहे हो!" बड़ी बेटी दोनों हाथो को पल्ले से पोंछती हुई बोलती है।

गले की कड़वाहट को गट से घुटकता है और नीचे देख लाठी खटखटाते अन्दर आकर खाट पर बैठ जाता है। इधर शायद कल्लो चिराग रखना भूल गई, अच्छा ही है। जैसे वह उजाले में आने से कतरा रहा हो और खाट पर लुढ़क जाता है। अंधेरे में ताकने लगता है। अन्दर से लड़के के बड़बड़ाने की आवाज अब तक आ रही है। रसोई में बर्तन उठाने, पीढ़ा खिसकाने और जलती लकड़ी पर पानी डालने की आवाज आ रही है।

कल्लो एक हाथ मे चिराग और दूसरे में थाली पकड़े आती है। वह सारी पिछली बातों की कड़वाहट को भूल जाता है और झट खाट के नीचे मे अपनी थाली खींचता है। कल्लो थाली में दूर से खाना डालती है। वह उसे ताकता है। बाल पक गये पर अब तक बूढ़ी नहीं लगती, जैसे अभी भी जवानी किसी झुरी को पकड़े अटकी खड़ी हो। उसे यकायक पुरानी कल्लो याद आ जाती है। मन में पड़ी सील पिघलने लगती है और वह बड़े लाड़ से उसका हाथ पकड़ लेता है, "कल्लो!"

वह 'हाय' कहकर झट हट जाती है जिससे हाथ की थाली गिर जाती है और मोटी चूड़ियां एक साथ खनखना जाती हैं।

"क्या हुआ?" बड़ी बहू दरवाजे से झांकती है।

"धोखे से थाली गिर गई," कल्लो कह देती है और उसे जलती आंखों से देखती है। वह आंखों के पानी को जबरदस्ती थामे, नीचे पड़ी अपनी अधूरी अंगुलियों को दीनता से देखता है, "हे भगवान, मैंने यह क्या किया, क्यों मैंने उसके हाथों को छू दिया!"

कल्लो उठ जाती है और साबुन से हाथ धोने लगती है। उसकी आंखों से आंसू गिर-गिरकर झुर्रियों मे समाने लगते है। गला सूख जाता है, वहा हल्के-हल्के कांटे उभर आते हैं। उससे एक कौर नहीं खाया जाता, थाली को नीचे सरका देता है। कांपते हाथों से चिराग को संभालकर पकड दूर कर देता है, ताकि मुह पर उजाला न पड़े। उसने कितनी मुश्किल से अपने तीनों बच्चों को पढ़ाया। क्या एक मामूली घर-घर पानी भरने वाला अपने बच्चों को पढ़ा सकता था? पेट काटकर, पेशगी मांग-मागकर फीसें दी और किताबें ली। मास्टर ने तो कहा भी था कि गरीब बच्चों को फीस और किताबें स्कूल से ही मिल जाती है पर वह मना कर गया था, अगर बच्चे बचपन से ऐसे पढ़ लेते तो उनके मन मे बचपन से मांगकर पढ़ने और दूसरो के रहम पर रहने का बीज पनपने लगता, और वे दूसरों से अपने को हीन समझने लगते। दु.ख मे पढ़ने वाले ही तो अच्छे बनते हैं, दूसरों के आसरे पढ़ने वाले निकम्मे बन जाते है। और आज सब कहीं-न-कहीं नौकरी से लगे हैं। भगवान ने सब दिया है, बस, बड़ी बहू की दस साल से गोद सूनी है। भगवान भी कभी-कभी कितना निर्दयी हो जाता है। कभी-कभी मुह-बंद कलियों की पाखुरियो को खिलाना ही भूल जाता है। मंझली मैके है। आजकल में आ जायेगी, देखें क्या हुआ है उसे।

खट से कपाट बन्द करने की आवाज आती है। वह चौंकता है—तो क्या दस बज गये? इधर आगन में खुलने वाला दरवाजा भी बन्द हो गया। उसका पेट फिर उमठने लगता है। खाने को देखता है, उस पर कई मच्छर

भिनभिना रहे हैं। वह थाली को उठाकर गोद में रख लेता है। पहला कौर ही गले में फंस जाता है—"अरे! क्या नीचे की जली साग बहू ने दी है?"

ऊपर वडी बहू के कमरे की बत्ती भी बुझ जाती है। पास बंधी भैंस का जुगाली करता मुह चपड़-चपड़ हो रहा है। वह करवट पर करवट बदलता है, कुएं के पास वाली नाली काफी भर गई है। दुर्गन्ध से नाक फटने लगती है। नाली के मच्छर भिनभिना रहे है। पाखाने का दरवाजा आज खुला रह गया दिखता है। तभी टप से एक आम झाड़ से टपक पडता है। वह उठता है, आम को जल्दी से चूसने लगता है। कितना मीठा है! सवेरे कहां नसीब होता! एकाएक कमरे में रोशनी होती है। वह झट मे आम को फेंक देता है। आगन मे खुलने वाला दरवाजा खुल जाता है।

"क्या कर रहे हो?" कल्लो की आवाज आती है। सहसा कोई उत्तर नही सूझता और वह झूठ बोल देता है, "लाठी ढूढ़ रहा था।"

"पर वह तो तुम्हारे हाथ मे है।"

"अयं, देखो तो कितना दिमाग चल गया मेरा," वह खिसियाकर खाट की तरफ बढता है। अधूरे फेंके आम का दुख होता है।

दोपहर को अपनी खाट पर बैठा वह कमीज को तह करता है और सामने बंधी रस्सी पर टांग देता है। धूप खटिया तक आने लगी है। वह अपनी अधूरी अंगुलियो से खाट को पीछे सरकाता है और बैठकर बदन पर चढ़े खटमल को पैर के अगूठे से दबा देता है। न जाने कल्लो को कब फुरसत होती है, उसे नहलाये। अधूरी अंगुलियों से तो लोटा पकड़ते नही बनता, वह दूर से पानी डाल देती है तो नहा लेता है। कितने दिन हो गये नहाये, पहले तो जल्दी-जल्दी नहला देती थी पर अब लापरवाह हो गई है। उसे फुरसत कहा? साली बेटा-बहू को मस्का लगाती रहती है। भूल गई जब मेरे साथ ऐश करती थी। बेटा-बेटी के दो टाइम के टुकड़े तोड़ती है और बदले में दिन-भर उनकी गुलामी करती रहती है।

अन्दर एक शोर-सा उठता है और पेटी रखने, बच्चे के रोने की आवाज़ को सुन वह समझ जाता है मझली आ गई है। वह खिल जाता है और दो

बार खटिया से उठता है और बैठ जाता है। शायद कल्लो दोनों हाथों में बच्चे को पकड़े लाते दिखे, पर ऐसा कुछ नहीं दिखा और बेचैनी से हथेलियों को मसलने लगता है। न जाने कैसा होगा? ओह, आखिर खानदान के तार जोड़ने वाला तो हुआ। चलो, लटकी हुई रस्सी खूंटी से बंध गई!

दरवाजे पर कुछ आहट हुई। उसने उम्मीद में देखा, कल्लो थी, पर हाथ खाली थे।

वह उतावली में खड़ा हो जाता है, "बहू आ गई है?"

"हां," कल्लो छोटा-सा उत्तर देकर मुड़ने लगती है कि वह झटके से पूछ लेता है, "मुन्ना है या मुन्नी?"

"मुन्ना है," वह अन्दर चली जाती है। वह फिर खाट पर बैठ जाता है। जी होता है अन्दर जाकर देख ले, पर अपनी बीमारी की याद आते ही सिहर जाता है, फिर किसी ने अपमान कर दिया तो?

मंझली मुंह धोने कुएं तक आती है। उसे देखकर दूर से ही प्रणाम करती है। वह एकाएक निहाल हो जाता है।

"रानी बहू, मुन्ना कैसा है?" बहू के चेहरे पर मुसकान खिंच जाती है। "अभी लाती हूं," कहकर अन्दर चली जाती है। वह खुशी से उतावला हुआ टहलने लगता है कि बहू बच्चे को लेकर आती और दूर से दिखाती है। वह खुशी से बेहाल हो जाता है। वहीं से प्यार करने लगता है। "मेरा मुन्ना, राजा मुन्ना!" वह हंसता है। बहू बच्चे को लेकर रसोई में चली जाती है। वह दोनों हाथों को छाती से लगा लेता है, "भगवान, उसे मेरी उम्र दे देना।"

बड़ी बहू मसाला पीस रही है। उसका चेहरा उतरा हुआ है और आंखें सूजी हैं। वह देखता है, दुख होता है। भगवान इसे भी तो एक देता, बच्चे को देख उदास हो गई है। वह ममता से भरकर बोलता है, "बहू!" वह उसे सूनी-सूनी आंखों से देखती है।

"आज बाल नहीं बांधे?" उसे अपना प्रश्न बेढंगा लगता है। उसके इस बेतुके प्रश्न को सुन वह सठिया गया है वाले अन्दाज से देखती है, फिर

पीसने लगती है।

कल्लो भैंस बांध रही है। वह उससे पूछता है, "ए, मुन्ना क्या कर रहा है?"

"सो रहा है,तुम्हारे-जैसा बैठा थोड़ा रहेगा," उसका जवाब सुनकर वह चुप हो जाता है। मन से जोड़-जोड़कर सोचता है—मुन्ना सो रहा होगा, एक अंगूठा मुह में होगा, बहू पास बैठी उसके कपड़े सिल रही होगी और बड़ी बहू थाली में चावल बीन रही होगी और बीच-बीच में सिर उठाकर मुन्ने को देख ठंडी सांस छोड़ रही होगी।

तीन-चार घंटे हो गये मुन्ना को देखे। उसे लेकर सीने से भींचने को मन हो रहा है। उस दिन रामू सुनार कैसे अपने पोते को अगुली पकड़े बाजार ले जा रहे थे। और वह बूढ़े जग्गू के पास बैठे-बैठे कैसे कहानी सुनते हैं। बीच में उसका पोता उसकी दाढ़ी खींचता है। काश, उसका भी पोता उसके साथ···पर इतना सोचते ही झप से आंख झपक गई और आख से पानी चपचपाने लगा।

शाम फैल रही थी। आंगन में लगे झाड़ो को अंधेरा निगल रहा था। सब मटमैले-मटमैले दिख रहे थे। रसोईघर की छत से धुआं उठ रहा था। ओसारे में कल्लो गौरसी में कण्डे जोड़ मुन्ने को पैरों पर डाल सेंक रही थी।

रात के जूठे बर्तन बहू बाहर निकाल रही है। वह सबके सोने की बाट जोह रहा है। पहले ऊपर कमरे में अंधेरा होता है। फिर दाए बाजू के कमरे में अंधेरा होता है और कल्लो भी पानी खींचकर पैर धोकर सोने चली जाती है।

वह सांस रोके आहट लेता है—सब सो गये या नहीं? जब पक्का विश्वास हो जाता है तो उठकर लाठी टेकता धीमे कदमों से अन्दर जाता है। अन्दर बिलकुल अंधेरा है। थरथराते पैरों से आगे बढ़ने लगता है कि सामने रखे स्टूल की नोंक घुटने से लगती है। हल्की-सी सिसकारी के साथ सहलाने लगता है। टटोलता-टटोलता वह बहू के कमरे के सामने ठिठकता

है, कमरे मे हल्का उजाला है। बेटा दीवार के पास लगी खाट पर सोया है; और बहू थोड़ा हटकर मुन्ने के साथ सोयी है। मुन्ने को देख उसका कलेजा हरकत करने लगता है। वह धीरे-से मुन्ने की ओर बढता है, दोनो हाथों को आगे बढ़ाता है। एक बार, बस एक बार उसे चोरी से ही सही, भीच लू, फिर मन का बोझ उतर जायेगा। उसका हाथ मुन्ना तक पहुंचता है कि बहू कुनमुनाकर चादर खीचती है। वह डर से काप जाता है और थर-थर कांपती टांगों को रखते टटोलते-टटोलते बुझे मन से लौटने लगता है। लगता है जिन मोह की रस्सियों से वह बंधा था, अब वे रस्सियां एक-एक टूटकर लटक रही है।

आया—क्या वह उसकी मजबूरियों को नही समझती ? टिकू को आठ-पैंतालीस पर स्कूल जाने को तैयार करना होगा। गाडी आती ही होगी।

उसने घडी देखी। समय आगे खिसक रहा था। जीवन की यह अनियमितता उसे खलने लगी। पति के जीवन मे तो ऐसा नहीं होता था। उस समय हर काम कितना समय पर हो जाता था ! उसे इतना भटकना भी नही पडता था।

पति की याद आते ही उसकी सूनी आंखो मे चुभन होने लगी। कैसे पल-भर मे सब कुछ समेटकर मौत पीछे के रास्ते से चुपचाप निकल गई, और वह कुछ भी न कर पायी। केवल ठगी-सी खड़ी रह गई। करती भी क्या ? वह खुद पति को हवाई जहाज मे बैठाकर आयी थी। शायद मौत के पीछे दौडती-रोती-चिल्लाती। सावित्री कैसे सत्यवान की मौत के हाथ से निकाल लायी थी। पर वह तो पति के मरने के दिन को जानती थी, उसने दीवार पर निशान लगा रखे थे। पर उमा को तो कुछ मालूम नही था। वह तो खुद पति को मौत के हाथो सौपकर हाथ झाडकर छटपटा रही थी। अभी वह वापस घर आने की सोच ही रही थी कि एक भारी हलचल ने उसे कंपा दिया। जोर-जोर से ऐलान हो रहा था कि अभी जो जहाज उडा है, वह मुश्किल से पन्द्रह-बीस मील दूर जाकर ही टकरा गया था। और वह बहुत ही टूटे मन से आगे के समाचार जानने के लिए कुछ भयभीत-सी, कुछ उत्सुक-सी घर लौट आयी थी।

सब कैसे कितना जल्दी हो गया ! और उस पर आ पड़ी थी दो बच्चों की जिम्मेदारी ! बड़े शहरो का अपना जीवन, और उस भीड़ को अकेले नापती वह खुद।

कॉलबेल बजने लगी। वह दरवाजे की ओर बढी। फार्म का लडका सफेद ड्रेस में खड़ा था।

"मेमसाहब, अण्डे !"

अण्डे लेते हुए उसका मन काफी हल्का लग रहा था। शायद इसलिए कि अब उसे बेकरी जाना या फोन करना नही पड़ेगा।

दरवाजा बिना लगाये ही वह अण्डे लिये अन्दर आ गयी। हीटर के प्लग लगाकर उसने अण्डे उबलने रख दिये। वापस दरवाजा बन्द करने आयी तो भूरी बिल्ली पायरी पर लेटी सुबह की धूप सेंक रही थी।

उमा मुसकराई और उसने बासी बची डबलरोटी का टुकड़ा लाकर उसके सामने डाल दिया। उसने लपककर टुकड़े को उठाया और अहाते की दीवार फांद गई। दूर से जाती बिल्ली ऐसी लग रही थी, मानो मुह मे चूहा दबाये जा रही हो।

लाल छत वाले घर मे पेपरवाला घंटी बजा रहा था। उसने दरवाजा लगा लिया—क्या करना है दुनिया भर की खबरों को अपने मे समेटकर?

रात के सुखाये कपडों को उसने तार से समेट लिया। दोनो बच्चे जाग रहे थे और देगची मे उबलते अण्डो को इधर से उधर नाचते देख रहे थे।

"मामा, हीटर बन्द कर दें ?" टिंकू ने पूछा

"हां, बेटा, समय तो काफी हो गया है।" उसने दोनों खिड़कियो पर सटी चिक को लपेटकर ऊपर बांध दिया। कमरे में ढेर उजाला फैल गया। खिडकी के सामने से दूधवाले साइकिलों पर तेजी से घंटी बजाते जा रहे थे।

उसने निक्कू को उठाकर जमीन पर खडा कर दिया। बच्चो के फ्रेश होने तक वह टेबिल पर नाश्ता लगाने लगी। पहले यही सुबह कितनी जल्दी की होती थी। जल्दी से उसे ब्रेक-फास्ट तैयार करना होता था। पर अब तो समय उसके पास बचा है। भागती हुई जिन्दगी मानो सहसा जड़ हो गई है।

स्कूल की बस सामने सड़क पर खड़ी थी। टिंकू जाते समय उसके पास आया, "मामा, मेरे स्कूल जाते मे अगर डैडी आ जाएं तो फोन कर देना।"

"हां, बेटा, जल्दी से फोन कर दूगी।"

रोज का यही सवाल, और टिंकू सड़क की ओर दौड़ रहा था।

वह खिडकी मे खड़ी उमे देखती रही। पायरी पर अब भी निक्कू खडा जाते हुई भाई को देख रहा था।

बस के जाने पर भी दोनों वही खडे रहे। उमा को फिर वही सवाल परेशान कर रहे थे। दोनों बच्चो के छोटे-छोटे मन मे कैसे डैडी के मरने की बडी खबर को भरे? उन्हे कैसे बताये, डैडी कलकत्ता से अब नहीं लौटेंगे? उनके मंगाये उपहार अब डैडी नही ला सकेंगे···

उसके लिए सबसे बडी समस्या आज भी बच्चो को समझाना था। और अब तक वह यही नही कर पायी थी। बच्चों ने डैडी की लाश तो देखी नही थी। लाश दो दिनों के प्रयत्नो के बाद एक पेड़ पर उल्टी लटकी मिली थी। उमा खुद लाश को देख नही पा रही थी। उमा और दूसरे लोगों ने जल्दी से उसी गाव में अन्तिम संस्कार कर दिया था, क्योंकि लाश फूलकर बदबू करने लगी थी। बच्चे मेरी के पास थे। जब वह खुद पति को ठीक से देखने का साहस नही जुटा पायी थी, तो बच्चे कैसे करते?

आज भी उमा के लिए समस्या है। उमा ने कभी सोचा भी नही था कि इतने छोटे-छोटे मन की समस्या इतनी विकट होगी। उसे याद आया अमेरिका के प्रेसीडेन्ट कैनेडी की पत्नी श्रीमती जैकेलिन कैनेडी ने अपने पति के मरने का समाचार बच्चों को सबसे पहले समझाया था, और इतनी अच्छी तरह से उनके मन को बांध दिया था कि बच्चे खुद बड़े सहज ढंग से अपनी आया को समझा रहे थे—"तुम्हें मालूम है मामा ने बताया, डैडी को एक बहुत बुरे आदमी ने गोली से मार दिया।"

कितने छोटे-से वाक्य में बच्चे अपने मन को संभाल गये थे! पर वह ऐसा साहस जुटा नही पाती। जब वह बच्चों को समझाने के लिए पास बिठाती है तो पहले वह खुद रोने लगती है। वह अपने मन को जितना बांधती है, उतना ही वह बिखरता है, और इस बिखरने और समेटने में ही उसके हाथ से वह क्षण भी खो जाता है, जिसे वह कई दिनों के प्रयत्नों के बाद तैयार करती है।

निक्कू फर्श पर अकेला बैठा नीचे माचिस की तीलियों को वापस माचिस मे रख रहा था।

टार्च के खाली सैल अलमारी के एक बडे हिस्से को घेरे है। आजकल टार्च का सैल कितनी जल्दी खराब हो जाता है ! सडक का बढ़ता शोर घर की दीवारों से टकराने लगा। उमा ने खिडकी से झांका, सब्जीवाला ठेले मे ढेर सारी सब्जियां रखे जा रहा था। उसने उसे पुकारा। निक्कू को उसने गोद में उठा लिया।

"बेटा, मामा खाने में क्या बनायेगी ?"

"गोभी-मटर।"

वह हस दी। सहसा उसे इन सुबहो के पीछे वाली सुबह की याद आ गई, जब वह ऐसे ही बच्चों से पूछती तो चट से उसके पति कहते—"गोभी-मटर।" उसने उदासी से भरकर सब्जीवाले को गोभी-मटर दे जाने को कहा। सब्जीवाला सब्जियां तौलकर दरवाजे के पास डाली मे रख गया। निक्कू डाली उठा लाया—"मामा, सब्जी !"

निक्कू सो गया था। उमा टिंकू का इन्तजार कर रही थी। कुकर उसने खोला नही था। धुले हुए बाल पीठ को घेरे हुए थे। उसने डायरी उठा ली। वह रोज इसी तरह डायरी लिखती है। उसे याद है डायरी लिखने की आदत उसको एक मिस ने डाली थी। वह अंग्रेज महिला थी, और बहुत भावुक। हर लड़की को डायरी लिखने को कहती। उसके चले जाने के बहुत बाद उमा को किसी ने बताया था—मिस जिस युवक से प्रेम करती थी, वह लड़ाई मे मारा गया था।

डायरी के पन्ने पलटते हुए एक पृष्ठ पर उसकी दृष्टि रुक गई, जिसके एक पूरे पेज पर सिर्फ एक पंक्ति लिखी थी—"किसका शाप मुझे खा गया।"

वह देर तक इन शब्दों को सहलाती रही—बहुत उदास-सी, और एकटक शेल्फ में रखी किताबो को देखती रही। मनीप्लाट की बेल दीवार के आधे भाग को घेरे हुए थी। उसे किसी पुस्तक मे पढ़ा वाक्य याद आया,

"लोग बड़प्पन का दिखावा करने के लिए मनीप्लांट लगाते हैं।"

उमा को इस टाइम मेरी के आने की उम्मीद थी, क्योंकि वह अकसर बारह बजे वाला शो देखकर तीन बजे ड्यूटी पर लौट आती थी। मेरी रोज की तरह आज भी बहुत खुश रहेगी। उसके मना करने पर भी बच्चों को चाकलेट का पैकेट देगी। मेरी यह बच्चों के प्रति ममता दिखाने को करती है या पड़ने वाली डांट की सिफारिश में यह होता है, यह आज तक समझ नहीं पायी। मेरी शायद दोनों अलग-अलग समय को एक में जोड़ देती है, या घटा देती है। एक में से एक गया—शून्य बचा, और एक में एक जुड़ा—दो हुआ। घाटा तो शायद कहीं नहीं।

उसने रात की आधी जली मोमबत्ती को उठाकर देखा, अभी और काम दे सकती है। उसने बाद के किन्हीं क्षणों के लिए उठाकर रख दिया। टेबिल पर रखा एशट्रे उठाकर अलमारी में रख देना है। पति की पुरानी यादगार की चीजों में इसे भी रख देगी, पर याद ही नहीं रहता। वह देर तक एशट्रे को देखती रही। फिर उसने उसे उठा लिया और उसका ढक्कन अलग कर दिया। सिगरेट की पुरानी तीखी गन्ध उसके नथुनों में भर गई।

पति के लिए लाये दोनों फ्रेम अभी भी वैसे ही बंधे उसकी अलमारी में पड़े हैं। बच्चों के जन्म-दिन पर बच्चों के नये फोटो उसमें लगा देगी, पर सहसा विचार आता है, पति के लिए लायी वस्तु पर उसे किसी भी हालत में दूसरों की परछाईं नहीं पड़ने देनी चाहिए, चाहे वह उसके बच्चे ही क्यों न हों।

उसे दुःख हो रहा था। मेरी के कारण वह आज लंच में दोनों बच्चों को गोश्त न दे सकेगी। दोनों बच्चे रोस्ट किया गोश्त बहुत ही चाव से खाते हैं।

एक चील नये चूजे को दबाये आसमान पर भागी जा रही है। उसके पीछे बच्चों का एक झुण्ड दौड़ रहा है...

मार्टिन लूथर किंग की हत्या का समाचार उसके घाव को कुरेद

गया था। क्या अच्छे फूल केवल तोडने के लिए खिलते हैं ? हर महान आदमी की हत्या होती है। क्या महान बनना या होना अपनी मौत को निमंत्रण देना है ? उसे याद आया, उसने कहानी पढी थी। एक बहुत ही सच्चे और ईमानदार आदमी का दरवाजा मौत ने खटखटाया। वह आदमी वाहर आया और मौत को देख घबराया। उसके मन मे घबराहट हुई क्योंकि अभी तो उसके कुछ भी अरमान पूरे नहीं हुए थे। उसकी प्रेमिका पढ़ती थी, और वह उसके इन्तजार मे कुआरा था। उसने मौत के आगे हाथ-पैर जोड़े तो मौत ने कहा—मैं इसलिए आयी हूं क्योंकि तुम अच्छे पुरुष हो और अच्छे आदमी को दुनिया में जीने का अधिकार नही। वह आदमी बहुत रोया-गिड़गिड़ाया, आखिर मौत को दया आ गई और यह कहते हुए चली गई—आज से तुम बुरे बन जाओ तो जल्दी नही आऊंगी। उस दिन से वह आदमी बुरा आदमी बन गया।

क्या डॉ० किंग के दोनों बच्चो ने भी अपनी आया से कहा होगा कि डैडी को बहुत बुरे आदमी ने मार दिया ?

शाम को वह बहुत इत्मीनान से अहाते मे बच्चों को क्रिकेट का खेल समझा रही थी। मेरी के आ जाने से वह घर के कामो से फुर्सत पा गई है। मेरी का रह-रहकर नयी देखी फिल्म का गुनगुनाया गीत सुनाई पड जाता है।

"मामा, मेरी फिर गाना गा रही है, फूडिंग में इलायची की जगह गोल मिर्च डाल देगी।" टिंकू चीखता है।

उसे हंसी आ जाती है। टिंकू अपने डैडी की तरह खाने-पीने में रुचि रखता है।

मेरी तार पर धुले कपड़ों को डालते हुए उन लोगो की ओर देखती है। भूरी बिल्ली अहाते की दीवार पर बैठी उनका खेल देख रही है। लाल छत वाले घर के लोग जल्दी-जल्दी सिनेमा के लिए घर से जा रहे हैं। पीली कोठी के सामने एक नीले रंग की कार खड़ी है, जिसकी खिड़की से एक कुत्ता लम्बी जीभ निकाले सड़क पर चरती मुर्गी को देख रहा

वह कई बार सोचती है, घर को किराये पर उठाकर शिमला चली जाये। भाई के कितने पत्र आ चुके हैं। पर वह बच्चों का ध्यान कर यह विचार छोड़ देती है—कहीं बच्चों के मन में यह बात घर न कर जाये कि वे असहाय-से दूसरो के घर जी रहे है। वह बच्चों को इसी पुराने वातावरण मे रखना चाहती है, ताकि बच्चों के मन पर किसी बात का दुख न हो। वे यह न समझने लगें कि उनके डैडी और उनका घर ईश्वर ने छीन लिया है। वह इन्हे इसी वातावरण मे रखेगी, चाहे यह वातावरण खुद उसको कितनी ही पीडा देने वाला क्यों न हो।

उसे याद है, उसकी सखी का पति लड़ाई मे मर गया। वह अपने इकलौते बेटे को लेकर मायके चली आयी। बच्चे का मन पुराने वातावरण को भूलना नहीं चाहता था और नये वातावरण को स्वीकारना नही चाहता था। वह अंदर-ही-अदर दुःखी-सा रहने लगा। जब वह बडा हो गया तो मा के मनाने पर भी विदेश चला गया और वहां किसी लड़की से शादी कर बस गया।

मेरी कपड़ो पर आयरन कर रही थी। टिंकू पास बैठा मेरी से 'उपकार' फिल्म की कहानी सुन रहा था। उमा ने देखा, मेरी नये जूते पहने थी।

"अच्छा ! तो उसके डैडी को मार डालते है ?"

"हां।"

"फिर···उसकी मामा खूब रोती···"

"टिंकू, चलो, बाहर चलें।" उमा ने बातचीत का सिलसिला बीच में ही तोड दिया।

वह दोनों बच्चों को लेकर पायरी पर खड़ी हो जाती है। सामने मैदान में लगे मीनाबाजार की रोशनी यहां से साफ दीखती है। वह रोज बच्चों को यही खड़े होकर घूमती रोशनी दिखाती है।

"मामा, वे लोग कहां जा रहे हैं ?"

उसने चौककर सामने देखा और वह पलभर जड हो गई। सामने सड़क से कुछ मुसलमान जनाजा लिये सिर झुकाये चुपचाप जा रहे थे।

वीराने

लगातार धूप में चलने के बाद जब वह घर की सीढ़ियां चढ़ बरामदे में आयी, तो उसे अच्छा लगा। उसने हल्के-से दरवाजे को ठेला और अन्दर आ गयी। मम्मी अकेली बिस्तर पर पड़ी कोई किताब पढ़ रही थी। उसने हाथ की किताब को सिंगार-मेज पर रख दिया। किताबें रखते समय उसकी निगाह शीशे पर चली गयी—सफेद साड़ी में सूखा-सूखा सफेद चेहरा।

उसने मुड़कर मम्मी को देखा, मम्मी उठकर रसोई में चली गयी थी। उनके जाने पर बिस्तर खिंचकर सिकुड़ गया है। कमरा अजीब-सी उमस से भरा है। रसोई से स्टोव में पम्प करने की आवाज आ रही थी। उसने बालों में पिन खींचकर सामने वाली तिपाई पर फेंक दिये और बालों को बिखेर दिया। फिर उसने कुर्सी के हत्थे पर सिर टेक दिया।

शायद वह सो गयी थी। मम्मी के कमरे में आने की आहट से वह चौंक उठी। मम्मी एक हाथ में प्याला और दूसरे में नाश्ते की प्लेट पकड़े सामने खड़ी थी। उसने मम्मी के हाथ से केवल चाय का कप ही लिया।

"मम्मी, तुमने बेकार उस छोकरी को भगा दिया। वह सब काम संभाल तो लेती थी।"

मम्मी सामने वाले पलंग पर बैठ गयी—"हां, भले ही वह दिन-भर आटा-दाल चुरा ले जाये, भले ही तेरी सिंगार-मेज पर बैठी सिर कोरती रहे और तेरे साबुन से नहाती रहे। तुझे क्या?" और मम्मी का स्वर

अचानक धीमा हो गया—"फिर बेटी, मैं अपने घर का ही तो काम करती हूं। तू मेरी बेटी होते हुए भी मुझे नही समझ पाती ?" मम्मी का स्वर भीग गया था और वह शून्य मे ताकने लगी।

"नही मम्मी, तुम समझती नही हो। तुम···तुम थक जाती होगी।" उसनेक हने को तो कह दिया, पर उसे लगा कि प्रश्न का यह उत्तर नहीं था।

वह पलंग पर लेटी थी कि मम्मी आयी—"बेटी, यह मिस्टर राय के यहां जाने का निमन्त्रण है।"

उसने आंखें खोलकर देखा, मम्मी खडी थी—"मम्मी, तुम चली जाओ, मुझे जरा काम है। मैं हीटर पर सूप तैयार कर लूंगी बस, भूख नहीं है···" उसने डरते-डरते मम्मी को देखा। वह मुसकरा रही थी।

"बेटी, क्या इस जीवन में तुझे कभी भूख लगेगी ?" उसने मम्मी से नजरें चुराकर खिड़की से बाहर देखा।

मम्मी कपड़ों की अलमारी के सामने खडी साड़ी का चुनाव कर रही थी—"क्या पहनू समझ मे नही आ रहा।"

"मम्मी, आज स्कर्ट नही पहनोगी ?"

"नही बेटी, वहा सब साडी बाधकर आयेंगी।"

उसने अपनी अलमारी खोली—"मम्मी, यह साड़ी बांध लो। तुम पर खूब जंचेगी।"

"छि: छि: ! पागल है क्या, मैं विधवा ऐसी साड़ी पहन सकती हू !"

"मम्मी···" उसने उनके होठ पर अपनी उंगली रख दी, "मम्मी ! ऐसा न कहा करो। इससे मुझे आभास होता है कि डैडी नही है, वरना वह ···वह तो मेरे पास ही बैठे रहते हैं, मम्मी।" उसकी आखों से आंसू छलक आए। उसने मम्मी के कंधे से सिर टिका दिया।

मम्मी आंसू पोंछती बोली—"मगर बेटी, क्या मुझे अच्छा लगेगा, न जाने कब से इस साडी को ले रखा है, पर तू पहनती क्यों नही ?"

"मम्मी, मुझे अब यह सब अच्छा नही लगता।"

"क्यो ? तेरी उम्र सिर्फ चौबीस की है, कुआरी है। सिर्फ कॉलेज में

पढ़ाने से क्या होता है ! तू क्यों नहीं पहनती ?"

"मम्मी डियर, इसके आगे कुछ न कहो। तुम पहनकर जाओ, मम्मी, जाओ !"

वह अकेली बरामदे की सीढ़ियों पर बैठी है। शाम का झुटपुटा फैला है। आसमान पर कौओं-चिड़ियों का झुण्ड लौट रहा है। तपती धूप के बाद सुहानी हवा में पेड़-पौधे किलकारियां मार रहे हैं। सामने कुछ दूर पर लोग टेनिस खेल रहे हैं। न जाने टेनिस खेलते देख उसके मन की बंधी गाठ क्यों खुलने लगती है और उसके चेहरे पर मुर्दनी छा जाती है। क्या मम्मी को बता दू ? पर मम्मी क्या सोचेंगी ? वह कभी नही बता पाएगी। जाने वह खुल क्यों नही पाती ! बचपन से ही यह हाल है। मम्मी जब बीमार होती, सब पलंग के पास बैठे रहते, पर वह नहीं जा पाती। दूर से देखती और पिछवाड़े जाकर खूब रोती। मम्मी कहती, "यह मेरे पास क्यो नही आती ? क्या इसमें प्रेम नहीं है ?"

वह भरी आखों को फेर लेती—"मम्मी, तुम्हे कैसे बताऊं, मैं तुम्हे कितना प्यार करती हूं। परन्तु न जाने मुझे इतना संकोच क्यों दबाता है !"

"ओह, डैडी से भरा-भरा घर कितना अच्छा लगता था, जैसे हर चीज़ का अपना अस्तित्व है ! सच है, किसी घर का स्वामी मर्द न हो, तो वह घर ही नही लगता।"

मम्मी चूल्हे के पास बैठी है, पूरी कॉलोनी में अंधेरा है। चूल्हे मे तड़-तड़ कर लकडी जल रही है। पल-भर मे लकड़ी जलकर दहकता अंगारा बनती जा रही है। मम्मी के माथे पर पसीने की बूदें हैं। वह फुलके सेंक-सेंककर उसे देती जा रही हैं।

"मम्मी, तुम पहले से ही रोटी बनाकर रख लिया करो। बेकार इतनी गरमी में तपना पडता है।"

"तेरे डैडी गरम-गरम फुलके खाया करते थे न, इसलिए आदत पड़ गयी है। छूटती नहीं।"

तभी उसके पास रखा गिलास धोखे से हाथ लग जाने से गिर पड़ा और तेज आवाज के साथ गिलास का पानी बिखर गया।

रात का एक बज रहा है। वह कमरे में बैठी है। अचानक मम्मी आ गयी—"अरे, तू अभी जाग ही रही है?"

"नींद नहीं आ रही है, मम्मी!" उसने थके शब्दों में कहा। मम्मी उसका हाथ पकडकर ले गयी और आंगन में बिछे पलंग पर लिटा दिया और खुद भी बाजूवाले पलंग पर लेट गयी। मम्मी बहुत देर तक उससे बातें करती रही। फिर एकाएक चुप हो गयी। वह समझ गयी, मम्मी सो गयी है।

सामने वाले आम के झाड़ से आम टप-टप टपक रहे हैं। सामने आंगन की दीवार से एक बड़ी बिल्ली आयी और मिस्टर गुप्ता के आंगन में कूद गयी। ठंडी-ठंडी हवा कितनी भली लग रही है! रात की हवा कितनी सुहानी लगती है! चारों तरफ सन्नाटा, जैसे किसी ने जादू की लकड़ी घुमा दी है। पिछवाड़े वाली कच्ची सड़क से कुछ बैलगाड़ियां पार हो रही हैं। उनके चक्कों की आवाज आ रही है। बैलगाड़ियों के सामने लटकती लालटेन की रोशनी कभी दीवार पर, कभी आम के पत्तों पर धुंधली पड़ रही है।

वह करवट लेकर औंधी हो गयी और एक हाथ को मोड़कर उस पर ठोड़ी टिका दी। सामने हरसिंगार के फूल टपक रहे हैं। वह आश्चर्य से सोच रही है—यह भी क्या अजीब पेड़ होता है। ताड़ की तरह ऊंचा, छोटे-छोटे महकते फूल, सफेद पाखुरियां और मेहदी के रंग की डंडी। सुबह उठकर देखो, पेड़ के चारों ओर जैसे किसी ने फूलों की मोटी चादर बिछा दी है। कितने फूल रात में झरते हैं! रोज टोकरी भर-भरकर लोग फूल ले जाते हैं। एक दिन उसने अपना पलंग इसके नीचे बिछा लिया था, सवेरे वह पूरी फूलों में ढंकी थी। पूरा बिस्तर फूलों से भरा था। उस दिन अपने आसपास इतने फूल देखकर कितना अच्छा लगा था! पर, तभी मम्मी

यह देखकर उदास हो गयी थी—"राज़, इसके नीचे पलंग नहीं बिछाया कर, यह शगुन अच्छा नहीं।"

"ऊंह, मम्मी, तुम तो डैडी के मरने के बाद से शक्की हो गयी हो, भला ये फूल किसी का क्या बिगाड़ेंगे ?" डैडी की याद आते ही उसने मुह घुमाकर देखा, मम्मी की शाल गिर पड़ी थी और गाउन भी घुटनों तक उठ गया था। मम्मी की चिकनी-गोरी पिण्डलियां कितनी अच्छी लग रही है ! उसे याद आया, कभी रात को उसकी आंख खुल जाती थी, तो वह देखती, डैडी मम्मी को शाल उढा रहे हैं। याद आते ही वह उठी और मम्मी का गाउन खींचकर उन्हें शाल उढ़ा दिया।

शाम धीरे-धीरे उत्तर रही थी। वह और मम्मी कब्रिस्तान मे डैडी की कब्र पर गये थे। मम्मी ने सिर पर बडा-सा रूमाल बांध रखा था। डैडी की कब्र के पास मम्मी न जाने क्या सोच रही है और वह नीम के नीचे बैठी दूर तक फैली कब्रो को देख रही है। नीम के फूल झर-झरकर कब्रो पर गिर रहे है। धूप का सुनहरा आंचल कब्रों पर मे खिंचकर नीचे लटक रहा था। हवा की एक तेज लहर आयी और उसके पीछे ढेर पत्ते दौडे, जैसे उस लहर को दूर खदेड़ देना चाह रहे हों। सभी कब्रों के सिरहाने क्रॉस का चिह्न बना था। कई का सीमेंट झर गया था। कई बिलकुल नयी कब्रें थीं। काफी दिनों में आओ, तो डैडी की कब्र को पहचानने में कितनी मुश्किल होती है।

कब्रिस्तान मे लगे आम के झाड़ पर कई बच्चे चढ़े आम चुरा रहे है। क्या लोग यहा भी चोरी से बाज नही आते ! मम्मीके चेहरे से लग रहा था कि उनके शरीर मे सैकड़ों आंखें बन गयी है और वे सब अतीत के चित्र देख रही हैं कि उस दिन जब रात को डैडी को बक्स मे रखकर कब्रिस्तान लाये थे, गैस के उजाले में लम्बी होती परछाईं कितनी भयानक लग रही थी ! डैडी का चेहरा जब खोला गया, तो खुली आखो वाला चेहरा कितना अजीब लग रहा था, जैसे इस दुनिया के अन्तिम चित्र को वह आखों मे बसा लेना चाहते हों। 'डैडी मर गए' की कल्पना ही कितनी सिहरा देने वाली थी ! डैडी को देखने से तो लगता था, वह खुली आखो वाला कोई स्वप्न

देख रहे हो और जब सामने पादरी काला गाउन पहने खड़े थे, मम्मी डैडी पर हाथ रखे सिर झुकाये बैठी थी और सारे लोग चुपचाप खड़े थे। डैडी की छाती पर हाथ रखे काले गाउन मे लिपटी, सिर पर काला रूमाल बांधे मम्मी कितनी डरावनी लग रही थी, कितनी अजनबी लग रही थी ! उस रात एक घर उजड रहा था और कब्रिस्तान में नया घर बन रहा था।

जब कारीगर डैडी की कब्र को पक्का कर रहे थे, वह रोज कॉलिज छूटने पर यहीं आ जाती और इसी नीम के नीचे बैठी सोचती—ओह ! डैडी की छाती पर ईंट पर ईंट रखी जा रही है। क्या जीते-जी डैडी इतना बोझ उठा सकते थे ? डैडी को कितनी आस थी, अपना भी एक मकान हो जिसका कोई किराया न ले ! डैडी को क्या मालूम था कि उन्हीं की छाती पर वह मकान बनने वाला है, जिसका कभी कोई किराया नही लेगा !

उन दिनो जब डैडी को प्रार्थना करने की जगह पर, जहा एक तरफ चांदी का क्रॉस लटका होता, वही यीशु की तसवीर और उसके बाद डैडी की फोटो और चादी की तश्तरी मे जलती मोमबत्ती, सामने घुटने मोड़े मम्मी चुपचाप बैठी रहती उस समय उसे कितना तरस आता था मम्मी पर ! लगता था, इससे दुखद दृश्य और कौन-सा होगा और वह भी मम्मी के पीछे बैठकर डैडी के फोटो को तकने लगती।

अचानक पत्तो की चरमराहट से उसने चौंककर देखा—मम्मी उसके पास आ खड़ी हुई है। उसने डैडी की कब्र को देखा। वहा जलती मोमबत्ती और ताजे फूल रखे थे। आसपास कुछ और लोग अपने रिश्तेदारो की कब्रों पर फूल रख रहे थे। एक बच्ची अपने डैडी की कब्र पर फूल रखकर चीख रही थी—"लौट आओ, डैडी। डैडी, तुम्हारे जाने के बाद छोटा मुन्ना आया है। लौट आओ, डैडी !"

कब्रिस्तान मे आये हुए सभी लोग एक बार ठिठककर उस नन्ही-सी बच्ची को देख रहे थे, जो अपनी मम्मी का स्कर्ट पकड़े रो रही थी। एक बूढ़ा आदमी उसकी तरफ बढ़ा और उस बच्ची के सिर पर हाथ फेरता बोला—"न जाने कभी-कभी यीशु इतना अत्याचारी क्यों हो जाता है ?"

वह और मम्मी कब्रिस्तान से बाहर निकल रही है । रास्ते में दोनों चुप हैं । कब्रिस्तान से वापस आने पर न जाने मन क्यों इतना उदास हो जाता है, जैसे आंखों ने अभी-अभी जीवन का असली रूप देखा हो ! उसकी आंखों मे वही रोती बच्ची घूम रही है ।

दोपहर चढ रही है । वह कॉलेज गयी थी । मम्मी उसकी अलमारी ठीक कर रही थी । अचानक उसकी साड़ी मे लिपटी उसकी डायरी मम्मी को मिल गयी । उन्होंने आश्चर्य मे डायरी को उलट-पुलटकर देखा और पलंग पर बैठकर पढने लगीं ।

"आज डैडी, मम्मी और अशोक सब गुफाएं, मन्दिर देखने आये हैं । अशोक न जाने मुझे क्यों इतना घूरता रहता है । गुफाओ की मूर्तिया देखते-देखते अचानक मुझे देखने लगता है और मैं सिमट जाती हूं । कभी-कभी शायद मुझे चिढ़ाने के लिए ही नंगी मूर्तियों को गौर से देखता है और कनखियों से मुझे देखने लगता है । कितना शरारती है ।

मैं घास पर बैठी पहाडी को देख रही थी कि पीछे से आकर अशोक ने अपना हैट मेरे सिर पर रख दिया । मैंने चौककर उसे देखा···छि ! मम्मी अगर देख लेती तो ?

जब गुफा देखकर लौटे और टिफिन खोलकर खाना खाने लगे, तो वह मम्मी और डैडी की नजर बचाकर मेरी प्लेट में अण्डे के टुकडे डाल देता और मैं सहसा घबरा उठती···'हे ईश्वर, कितना निडर है !···डैडी देख लेते तो ?' मुझे घबराहट मे पसीना छूट जाता और वह मेरी स्थिति को भांपकर मुसकराता रहता ।

दोपहर को गुफाए घूमते समय वह जान-बूझकर डैडी और मम्मी से पिछड गया और मुझे भी इशारा किया । मेरे पैर भी धीमे हो गये और डैडी-मम्मी ऊपर चले गये । वह मेरा हाथ पकड दूसरी तरफ से जाने लगा । मैं और वह मीनार पर चढने लगे । गोल संकरी सीढ़िया चढ़ते-चढ़ते मैं उसकी छाती से टकरा गयी और घबराकर दचककर खड़ी हो गयी । वह मेरे सिर को सान्त्वना देने की गरज से थपथपाने लगा । हम दोनो ऊपर

अन्तिम छोर पर पहुंचकर बैठ गये। मीनार की जाली से छन-छनकर धूप आ रही थी। हम दोनों दीवार से लगकर बैठ गये। तब उसने मुझसे कितनी बातें की। कभी वह आत्मविभोर हो मेरे बालों को चूम लेता था। फिर हम लौट आये थे। नीचे उतरकर देखा, मम्मी और डैडी हमारा रास्ता देख रहे हैं। मुझे देख डैडी बोले—"राजू, अशोक के साथ वह मन्दिर देख आ, हम तो देख आये है, पर जल्दी लौटना।"

मैं और अशोक ऊपर चढ़ने लगे। मन्दिर में तो वहां एक पुजारी बैठा था। पुजारी आरती की थाली लेकर हमारी तरफ बढ़ा। अशोक हिन्दू है, इसलिए उसने आरती की। मैं एक तरफ खड़ी उसे देखती रही। पुजारी हमे चारों तरफ दिखा रहा था। एक मूर्ति के पास खड़ा होकर वह अशोक से बोला—"साहब, यह वह देवी है जो हमेशा सौभाग्यवती रही। इसके पैर के पास का सिन्दूर सुहागिनें लगाती है। आप भी बाई को लगा दो।"

मैं घबरा गयी। अशोक ने मुसकराकर, चुटकी से सिन्दूर उठाकर मेरी मांग मे भर दिया और मेरा मुह सिन्दूर की तरह तप गया। मैंने सिर झुका लिया। न जाने क्यों, मैं इनकार नही कर पायी।

जब हम लौटे, तो मम्मी मुझे देख चिल्लायी—"हे ईश्वर! यह मांग में सिन्दूर! क्रिश्चियन लोग सिन्दूर लगाते है ?"

मैं और अशोक घबरा गये—"मम्मी, उस पुजारी ने जबरदस्ती लगा दिया।"

"जबरदस्ती कैसे लगायेगा!" मम्मी चिल्ला रही थी।

"मगर राजू दिख अच्छी रही है।" डैडी बोले।

मम्मी खीजकर मुसकरायी—"तुम्ही ने इसे सिर पर चढ़ा रखा है।"

मैंने खुलकर सांस ली।

घर पर अशोक रोज आता है। टेनिस के कपड़ो मे कितना भला लगता है! रोज वह चुपचाप मेरे पढ़ने की टेबिल पर लाल गुलाब डाल दिया करता है। हम दोनों का प्यार दबा-दबा पल रहा है, जैसे धरती के भीतर ज्वालामुखी खौलता है। उस दिन इस ज्वालामुखी में विस्फोट हुआ, जिस

दिन अशोक टेनिस मैच में इंदौर जा रहा था। उस दिन मेरी स्थिति बहुत अजीब थी। मैं खुलकर न रो पा रही थी और न खुलकर उसे देख पा रही थी। मम्मी से मिलकर जब वह गैलरी मे आया, तो मैं वही खडी थी। मुझे देखकर वह मुसकराया—"राजू, मैं जल्दी लौटूगा।" और उसने मेरे बालों को चूम लिया। मेरी आंखें भर गयी।

कुछ दिनों बाद डैडी का ट्रान्सफर हो गया और मै ठगी-सी प्यासी-प्यासी-नजरो से डैडी-मम्मी के साथ जा रही थी। फिर वहां उसका मम्मी के पास पत्र आया था। पत्र मम्मी के नाम था, पर सारी बातें मेरे लिए थीं। मैं पत्र पढकर बहुत रोयी थी। कभी-कभी उसका पत्र आ जाता था, मम्मी के नाम। मैं तो जैसे हर क्षण उसी की याद में जी रही थी।

कुछ दिनों बाद एक नयी सुबह को लॉन मे मम्मी-डैडी चाय पी रहे थे। डैडी के हाथ में सुबह का अखबार था। वह एक घटना पढ़कर चौंके। मैं दरवाजे से टिकी थी—"इन्दौर होस्टल के एक कमरे मे अशोक मेहता नाम के लड़के की हृदय की धडकन बन्द हो जाने से मृत्यु हो गयी। वह बहुत होनहार था। आज पूरा कॉलेज उसके शोक में बन्द रहा। उसके तकिये के नीचे से एक लडकी का चित्र भी पाया गया, जिससे वह प्रेम करता था।"

"ओह !" मैं अवाक-सी चीख पडी—"मम्मी ! मम्मी !"

मम्मी ने मुझे सान्त्वना दी। पर वह कुछ भी जान नही पायी। मम्मी और डैडी क्या जाने कि मै ऐसी पगडण्डी पर चली आयी हूं, जो थोडी दूर चलकर जगल मे गुम हो गयी है, खत्म हो गयी है, और फिर बस चारों तरफ वीराने-ही-वीराने खड़े है।

आज तो डैडी भी नही रहे। डैडी के साथ मैं अशोक का चेहरा भी देख रही हूं और मुझे लग रहा है कि मम्मी की तरह मैं भी विधवा हो गयी हू, कुआरी विधवा ! मम्मी कई बार शादी को कह चुकी है। मम्मी को कैसे समझाऊं कि एक बार मन की मृत्यु हो जाने पर वह दुबारा नही जी सकता, बिलकुल उसी तरह जैसे अब डैडी नही लौट सकते, कभी नही लौट सकते !

उन्होंने उसकी डायरी पढ़ी और जड़ होकर वैसे ही बैठी रह गयीं। तभी दरवाजा ठेलकर वह अन्दर आ गयी। मम्मी के हाथ में अपनी डायरी देख उसे जैसे करेंट छू गया। वह धीरे-धीरे चलकर पलग तक गयी और औंधी पड़कर तकिए में मुह छिपा लिया।

"मम्मी, तुमने मेरी डायरी क्यो पढ़ी ? क्यों पढ़ी ?"

वह फूट-फूटकर रो रही थी और मम्मी उसका सिर सहला रही थी।

आदम और हव्वा

गंगा के घुमावदार, खतरनाक मोड़ से, विजू धीरे-धीरे ही सही, पर जीप उतार लायी थी। विजू के चेहरे पर भय था। जीप में बैठे ममी, उमी और मोविन घबराये-से एकटक सीधे रास्ते को देख रहे थे। जरा भी धोखा होता तो जीप सबको लिये सीधे पहाड़ के नीचे खाई मे आ जाती।

यदि विजू साथ नहीं होती तो क्या वे लोग उसी पहाड़ी बंगले में पड़े बस की राह देखते? फिर जीप को कौन लाता? उस पहाडी शाम को अचानक, अकस्मात महिम का लौट जाना जैसे सबको जड बना गया था।

महिम अचानक लौट कैसे गया? सभी उसी मे पूछना चाहते थे, पर उमी के जड हुए चेहरे को देख किसी में पूछने का साहस नही था। चचल विजू भी जैसे शात हो गयी थी। बस वह किसी खतरनाक मोड़ पर जीप रोक लेती और बडबड़ाती, "ओह, दीदी, तुम्हारे उन महिमजी ने तो सीधा नरक का रास्ता दिखा दिया है।"

विजू के झुझलाहट-भरे मजाक पर भी उमी हंसने का साहस नही जुटा पायी थी। कही-कही रास्ता दो ओर जाता था। ऐसे दोराहे वाले मोड़ पर विजू घबराकर जीप को खड़ा कर लेती, "ममी, किस रास्ते पर गाडी बढ़ाऊं? ओह गॉड, क्या मुसीबत है!"

तब गाड़ी रोककर इन्तजार करना पड़ता था कि कोई राहगीर

निकले तो रास्ता पूछे। आने के समय जो उत्साह था, वह सब खत्म हो गया था। सबको लग रहा था कि किसी प्रियजन की मृत्यु से लौट रहे हैं।

अचानक महिम बस से क्यों लौट गया था?

जीप जब डाक-बंगले के पास रुकी तो उर्मी ने देखा, डाक-बंगला सड़क के ठीक उल्टी दिशा में बना था, सड़क की ओर इसका पिछवाड़ा पड़ता था। जाने अंग्रेज इस तरह के बंगले क्यों पसन्द करते थे? उनके शहर के कलेक्टर का बंगला भी ठीक इसी तरह से बना था। खाई खत्म होने वाले हिस्से पर बंगले का मुख था।

बिजू जीप से कूदकर उतर गयी। वह भी उसके साथ उतर गयी। दोनों डाक-बंगले का निरीक्षण करती हुई आगे बढ़ गईं। दोनों ने ममी को और महिम को उतरते नहीं देखा। वह बगीचे के किनारे लगी रेलिंग को पकड़े नीचे झाकती है, नीचे ढलान पर पेड़ ही पेड़ थे और इनके नीचे केन का अलसाया रूप था। वह अपनी दृष्टि से नीचे तक की दूरी को नापती रही।

"बड़ा सुन्दर रोमांटिक वातावरण है न? जी चाहता है यहाँ हमेशा रहा जाये, जंगली सौन्दर्य भी इतना आकर्षित करता है!"

दोनों लौटीं। ममी सामने बरामदे में रखी लम्बी कुर्सी पर थकी-सी लेटी थीं। महिम अभी भी कन्धे पर थर्मस लटकाये लम्बे बरामदे में सीटी बजाता टहल रहा था। शायद वह बंगले के खुलने के इन्तजार में था।

जीप से मोबिन सामान उतारकर बरामदे के किनारे रख रहा था। बरामदे के दाहिनी ओर स्टैण्ड में घड़े रखे थे, वहीं पर पीतल का डोंगा लटक रहा था।

"अरे, सब खाली है!" बिजू घड़े का ढक्कन उठाकर कहती है।

तभी चौकीदार हाथ में चाबी लिये आया। उसने शायद बिजू के कहे शब्द सुन लिये थे, वह सबको सलाम कर अन्त में व्यस्त-सा बिजू से बोला,

"अभी पानी आ जायेगा।"

सभी दरवाज़ा खुलने की आशा मे उत्सुक बैठे थे। चौकीदार बड़ा दरवाजा खोलकर, खिडकियां खोलने चला गया। महिम खिड़कियां खुलने का इन्तजार किये बिना अन्दर चला गया। पूरे बंगले मे तीन बड़े-बड़े कमरे थे, हर कमरे से लगा बाथरूम था। बिजू घूम-घूमकर सारे कमरे देख रही थी। बाथरूम मे घुसकर वह जल्दी से निकल आयी और पैर पटकती-सी बोली, "यहां तो कही पानी नही है, क्या यहां कोई नही आता ?"

"नही साहब, ऐसी बात नहीं। दरअसल में बाथरूम के ऊपर वाली टंकी का पाइप खराब हो गया है, अभी कावर से पानी आ जायेगा," कहता चौकीदार सफाई में लग गया।

महिम बीच के बड़े टेबिल पर, जो शायद डाईनिंग टेबिल था, थर्मस और कैमरा रखकर थर्मस से चाय ढालने लग गया।

ममी अभी भी बाहर कुर्सी पर बैठी थी, वह बंगले की सफाई होने के इन्तजार मे थी। तभी मोबिन अन्दर आया।

"क्यों भैया, रसोईघर कौन-सा है ?" मोबिन को अपनी ड्यूटी शुरू करने की जल्दी थी।

"वह लाइन से जो कमरे बने हैं, उनमें से तीसरे को खोल दो।" मोबिन परदा उठाकर बाहर चला गया।

"ममी से पूछो चाय के लिए।"

"नही, ममी कॉफी लेती है, अभी मोविन बनाकर ले आयेगा।"

इस बड़े कमरे में आतिशदान भी था, पर लगता है लम्बे समय से उसे इस्तेमाल नही किया गया है।

वह खिड़की पर खडी बाहर का दृश्य झांकने लगती है, धूप मे अभी से गर्मी आ गई थी।

"क्या बजा होगा ?"

"आठ।"

"बाप रे, और अभी से इतनी तेज धूप !"

"ओह, गॉड ! यहां तो फ्राई हो जायेंगे...बिजली तो है ही नहीं।" विजू निराशा से ऊपर लटक रहे हाथ से खींचे जाने वाले विशाल पंखे को देखकर कहती है।

पखा शायद काफी पुराना था, क्योंकि उसकी लाल झालर का रग एकदम उड गया था और झालर जगह-जगह से फट गई थी।

"यह कोई आपका बगला है जो यहा खस के परदे लगे होंगे !" महिम विजू को चिढ़ाता है।

ममी अन्दर आ जाती है, "वाकई यहां तो बहुत गर्मी है, पूरा बरामदा अभी से गर्म हो गया है।"

चौकीदार अन्दर झांकता है।

"भाई चौकीदार, तुम सब काम छोड़ो और पानी का इन्तजाम पहले करो। तुम्हारा नाम क्या है जी ?"

"साहब, मुन्नीलाल।"

"यह मुन्नी के साथ लाल क्यों ?"

सब हंसने लगे। चौकीदार झेंपकर बाहर चला गया। खिड़की में मोबिन लकड़िया बटोरते नजर आया। विजू उसे देखकर हंसती है।

"ममी, यहा लकड़ियां भी नहीं हैं, जाने खाना कब बनेगा !"

"जी, यह जगल है। यहां हर चीज के लिए मेहनत करनी पड़ती है।" महिम वास्केट से पत्रिका निकालते हुए कहता है।

"महिम जाने, वही सबको यहा लाया है, उसी से पूछो।" ममी लम्बी कुर्सी पर लेटकर आंखें मूद लेती है।

"उन्हे भूखे मरना होगा और क्या ! देखना, दस के पहले नाश्ता मिले तो मेरे नाम पर कुत्ता पाल लेना।" विजू चिढ़ी हुई-सी बाहर चली जाती है।

विजू के जाते ही दोनों हंसने लगते हैं। महिम मौका पाकर उसे गहरी आंखों से देखने लगता है, वह लजाकर टेबिल पर देखने लगती है। बिजू शायद बीच का रास्ता पार कर रसोईघर के बरामदे में पहुंच गई थी।

मोबिन शायद आग जला चुका था।

दोनों बाहर बरामदे में निकल आते है। सामने पहाड़ था, विन्ध्या का विशाल पौरुष सामने केन को लजाता खड़ा था।

"बहुत सुन्दर स्थान है।" वह दीवार से टिक जाती है।

"इसी जंगली यौवन को कैद करने तो मैं जब-तब आ जाता हू।"

सामने चढ़ाई पर एक आदमी ऊपर चढ़ता दिखता है, वह कावर मे पानी ला रहा था और बुरी तरह हांफता लकड़ी का सहारा लेकर ऊपर चढ़ रहा था।

"लो, पानी आ गया, यहां पानी लाना भी एक कठिन काम है। तुम लोग यहां नहा लो, मैं नीचे से नहाकर आ जाता हूं," कहता महिम अन्दर चला गया। लौटा तो हाथ में तौलिया, साबुन, कपडे आदि उठाये था। वह तेजी से नीचे ढलान उतर गया।

"उमी, वड़ा बेढंगा रसोईघर है, खूब बड़ी-सी चिमनी और जरा-सा चूल्हा।" बिजू बरामदे की सीढ़ियां चढ़ते बोली। धूप में चलने से उसके गाल तमतमा रहे थे, ट्रिम किये बाल अस्त-व्यस्त-से हो गये थे।

बिजू की बात पर वह मुसकरा दी। कावर वाला ऊपर आ गया था और कावर को नीचे रख, धौंकनी-सी चलती सास को काबू मे कर रहा था।

"दो बाथरूम मे पानी रख देना," बिजू कावर वाले से बोली, फिर अन्दर से बिस्कुट का पुडा उठा लायी, एक बिस्कुट को कुतरते बोली, "तुम्हारे वह महिमजी नही दिख रहे?"

"नीचे नहाने गये हैं।"

"चलो, ठीक हुआ, वरना सारा पानी तो अकेले ही उडेल लेते।"

नहाकर उमी लौटी तो देखा महिम लौट आया है। उमी को देख उसकी आखो में प्रशंसा थी। छोटी, काली बिन्दी की साड़ी में वह भली लग रही थी। पीठ पर गीले बाल फैले थे।

मोबिन कॉफी बनाकर ले आया था। ममी दो प्याले पी चुकी तब कहीं

उनकी थकान उतरी और पहली बार लगा कि वाकई वह साथ आयी हैं। उनके चेहरे पर पुनः वही परिचित-सी मुसकान आ गयी थी। बिजू अभी भी बाथरूम में थी।

"बिजू, ज्यादा गोरी होने की चेष्टा मत करो, कॉफी ठंडी हो रही है।" महिम बाथरूम के पास जाकर चिल्लाता है।

थोड़ी देर में बिजू निकली, हरी सलवार-कमीज में वह सुन्दर लग रही थी।

"अरे, तुम तो वाकई गोरी हो गयी?" महिम ने कहा तो बिजू कॉफी का प्याला और केक की प्लेट उठाये दूसरे कमरे में चली गयी।

"लो, अब किसी को केक खाने को नहीं मिलेगा, अकेली हड़प जायेगी!" ममी ने हंसते हुए कहा।

बिजू तीखे नाक-नक्शे वाली सलोनी-सी लड़की है, पर रंग जरा सांवला है, जिसके कारण सब उसे 'काली, काली' चिढ़ाते हैं। छोटी थी तो पापा 'कल्लो' कहते थे। एक बार खाने के टेबिल पर पापा ने कह दिया था तो बिजू ने पूरा टेबिल-क्लॉथ खींच दिया था और सारी प्लेटें, गिलास जमीन पर आ गये थे।

शाम को अचानक हल्की बारिश होने लगी। जली हुई माटी की-सी गंध वातावरण में तैर रही थी। महिम नजर नहीं आया, सामने बरामदे में कुर्सियां डाले ममी और बिजू बैठे थे। बिजू कोई पुस्तक जोर-जोर से पढ़ रही थी और ममी बैठी सुन रही थी।

वह पीछे रसोई वाले हिस्से की तरफ मुड़ी। महिम रसोई में छोटे-से बरामदे में कुर्सी पर बैठा सिगरेट पी रहा था। उसे आश्चर्य हुआ।

"यहां अकेले क्यों?" उसने अधूरा-सा प्रश्न किया।

"आओ उमी, असल में सिगरेट पीना था, दिन-भर से पी नहीं थी, वहां ममी हैं न इसलिए…"

उसे सुखद आश्चर्य हुआ। महिम बड़ों का इतना आदर करता है, जानकर अच्छा लगा, वरना ममी को इन बातों से कोई एतराज नहीं था। वह काफी

खुले दिल की थी।

"पानी गिरने से वातावरण अच्छा हो गया है न?"

"हां, उमी, यह जली हुई माटी की गंध मुझे अच्छी लगती है। इसकी गंध ठीक वैसी ही है न, जैसी किसी नव-ब्याहता के शरीर से उठती सोंधी हल्दी की महक।"

गंगडन जाने का मार्ग कच्चा है। कच्ची सड़क के दोनो ओर भयानक जंगल है। विन्ध्या का विशाल घना जंगल हमेशा डाकुओं को पनाह देता रहा है। इस पहाड़ी रास्ते पर सिर्फ एक ही बस चलती थी जो मुसाफिरों को गंगडन, पलकोहा आदि गांव पहुचाती थी। रास्ते पर भी छोटे-छोटे गांव बसे थे। जब बस गाव के निकट पहुंचती तो नगे, गन्दे से बच्चों का झुड हो-हो कर गाडी के पीछे दौड़ता। वैसे गंगडन छतरपुर से ज्यादा दूर नही है, पर पहाड़ी कच्चे रास्ते से हड्डियो का एक-एक जोड खुल गया-सा लग रहा था।

बाहर कुछ लोगो की बातचीत की आवाज आयी, वह बाहर आयी तो देखा महिम लम्बी कुर्सी पर बैठा था और उसके पास दो-तीन आदमी खड़े थे। वह बरामदे के खम्भे से टिक गयी।

"यहां से आठ मील पर डाकुओं ने पडाव डाला है।" एक कह रहा था।

"अच्छा।"

"उन्हें आप लोगो के आने की खबर है।"

उसे आश्चर्य हुआ, महिम की नजरें उस पर पड़ गयी थीं। "आओ उमी, ये लोग खबर लाये है कि पलकोहा गांव के पास आजकल काफी शिकार है।"

"मगर बन्दूक तो साथ नही है?"

"ये लोग कह रहे है, पहाड़ी के नीचे काकजू करके एक ठाकुर रहते हैं, वहां मिल जायेगी। चलो, शिकार खेलने का भी शौक पूरा हो जायेगा।"

"उनसे चलकर मिलना चाहिए।"

"ठीक है, आज रात को शिकार का प्रोग्राम जमायेंगे, मैं काकजू से मिलूंगा।"

जीप जब काकजू के घर के सामने रुकी तो एक ऊंचा-पूरा आदमी जीप के पास आ गया।

"मुझे काकजू कहते हैं, आइये अन्दर।"

दोनों उतर पड़े। पुरानी हवेलीनुमा यह मकान था। उसे आश्चर्य हो रहा था कि बीहड़ जंगल में अकेली हवेली में रहने वाला यह कौन हो सकता था? हवेली के सामने दालान में दो-चार बच्चे खेल रहे थे। काकजू उसी को अन्दर ले गया। भीतर बहुत ठंडा था। सामने दो-तीन औरतें खड़ी थीं, उन्होंने खाट बिछाई। उन औरतों के शरीर पर चांदी और सोने के बुन्देलखंड के खास जेवर थे। सामने दीवार पर लाइन से कई बन्दूकें, नयी-पुरानी, सभी लटक रही थीं। इतनी संख्या में एक जगह बन्दूकें देखकर आश्चर्य हुआ।

इतनी दूर आना सफल हो गया, क्योंकि काकजू ने दो बन्दूकधारी आदमियों को साथ कर दिया था। काकजू ने अपना पूरा मकान व बाड़ा घुमाकर दिखाया। उन्हें धन्यवाद देकर जब महिम और उसी जीप पर बैठे तो रात हो गई थी। जीप का टप खोल दिया गया। दोनों बन्दूकधारी पीछे बैठे थे। रास्ते में जीप चलाना मुश्किल हो रहा था, क्योंकि जहां-तहां चीतलों का झुण्ड सड़क पर खड़ा मिलता।

मुन्नीलाल ने बताया कि काकजू पहले डाका डालता था, पर उस जीवन से तंग आकर उन्होंने यहां जंगल में मकान बना लिया और रहने लगे हैं। काकजू की दूर-दूर तक साख जमी हुई है।

पलकोंहा गांव से ही शिकार का प्रोग्राम बना था। जीप से पहले वहां जाना था, फिर वहां से पैदल जंगल में घूमना था। ममी, बिजू और मोबिन बंगले पर ही रुक गये थे। मुन्नीलाल ने दो ठाकुरों को बंगले में सुला दिया था।

वे लोग जब पलकोंहा पहुंचे तो शाम हो गई थी। खाना पटवारी के घर से बनकर आने को था। पलकोंहा गांव काफी छोटा है, छतरपुर से

आने वाली बस की यात्रा यहीं खत्म होकर सुबह यहीं से शुरू होती है। बस को आम के बड़े पेड़ के पास खड़े कर वे लोग बाहर खुले में ही खाना बनाकर बस में सो जाते हैं। गांव में खबर फैल गई थी, काफी लोग आस-पास आ जुटे थे। बच्चे टूटी मिट्टी की दीवार पर चढ़-चढ़कर इधर झांक रहे थे।

मुन्नीलाल बस-ड्राइवर के पास जा बैठा था। महिम टूटी रस्सी की खाट पर बैठा पटवारी और गांववालों से बातें कर रहा था। खाना पटवारी के घर से आने को था। वह खासी ऊब चुकी थी। गाव के बच्चों के लिए उसके कटे हुए बाल अच्छा-खासा तमाशा बने हुए थे। धीरे-धीरे विन्ध्या के पीछे चांद उतर आया। महिम उसकी परेशानी भांप गया और उसको केन की ओर घुमाने ले गया।

नदी को जाने वाला रास्ता मकानों के बीच से होता खेतो पर से उतरता था। चारों तरफ एक अजीब-सी शान्ति थी। चांदनी एकदम साफ थी। थोड़ी ही देर में वे लोग केन के पास पहुंच गये। सामने साफ चांदनी में बहता केन का स्वच्छ जल था, उसके किनारे तरबूजों के बड़े-बड़े खेत थे और उनके पीछे भयानक जंगल को समेटे विन्ध्या का विशाल पौरुष था। चमकती बालू मिली मिट्टी और अधसूखे वन पर उतरकर चादनी ने ऐसे सौन्दर्य की सृष्टि की थी कि जाने क्यों देखकर मन उदास हो गया। चारों ओर निगाह फैलाकर उस मौन निशीथ में चांदनी से धुले आसमान के नीचे खड़े-खड़े जाने कैसा तो लगा। वह देर तक उस विराट सौन्दर्य-सम्राज्ञी वन-सुन्दरी को अपलक निहारती रही। महिम उदास-सा किनारे बैठ गया।

"उमी, जाने कितनी बार मैंने चांद देखा है, पर लगता है यहां जो चांद उगा है वह कोई दूसरा ही है। क्या चांदनी भी इतनी अपूर्व हो सकती है! जब खुदा ने आदम और हव्वा को जमीन पर उतारा होगा तो ऐसी ही जगह होगी, है न!"

भयमिश्रित उदासी से भरकर दोनों उस विराट् सौंदर्य को निहार रहे थे। सामने था केन का शांत जल और दूसरी ओर था विन्ध्या का विशाल

पौरुष। उसके नीचे घनी वन-पंक्ति दूर तक चली गयी थी, जगारी और बबूल के पेड, कटीले बास और करौंदो की झाड़ियों से वनफूलों की भीनी खुशबू से वायु सिहरा रही थी।

तरबूजो के खेतों मे सियार चिल्लाया। दोनो चौककर जागे, जीप के हॉर्न की आवाज आ रही थी, दोनो को बुलाया जा रहा था। महिम हडबड़ाकर उठा तो पास ही सटकर बैठी उमी उसके ऊपर गिर-सी पड़ी। महिम ने अपनी बाहों में उमे समेट-सा लिया और वह लजाकर मुसकरा दी।

दोनों लौटे तो रात काफी बीत गयी थी। पलकोहा नीद की गोद मे सांस ले रहा था। शिकार पर जाने वाले ही इन्तजार करते बैठे थे। दोनो ने बस के पास बिछी टूटी खाट पर खाना खाया। महिम आलू के टुकड़े थाली के नीचे धीरे से सरकाता जा रहा है, देखकर उसे हसी आ गई।

चांदनी बहुत साफ थी और ऐसी चांदनी शिकार के लायक नहीं होती, पर चादनी के खत्म होने तक किसे यहां रहना था। जो भी दिख जायेगा उसी को निशाना बनाया जायेगा, इसी उत्साह मे महिम था। वह बार-बार उसे अपने पुराने अनुभव बता रहा था जब वे लोग छतरपुर से गगडन जाने वाली एकमात्र बस से सिर्फ शिकार के प्रोग्राम से ही आये थे, "उमी, हम लोग इसी बस से शिकार पर आये थे और मेरे साथ दो-तीन मित्र भी थे। हमारे साथ दो बन्दूकें थी। जब बस पहाड़ी रास्ते पर आ गई तो हम लोग ऊपर बस की छत पर बैठ गये थे। बप्पा बस का होशियार ड्राइवर था। जब कोई जानवर दिखता हम लोग धीरे से बन्दूक का खाली केस नीचे लटकाकर गाड़ी रोकने का इशारा करते, बप्पा तुरन्त इशारे पर गाड़ी रोक देता था। इस तरह हम लोग गगडन के रास्ते मे ही दो-तीन हिरन मार चुके थे।"

जब सब लोग जंगल के रास्ते पर बढे तो रात आधी बीत चुकी थी। एक आदमी के सिर पर पानी का घड़ा था ताकि जगल मे प्यास लगे तो पिया जा सके। महिम काफी आगे निकल गया था। वह घड़े वाले के साथ धीरे-धीरे चल रही थी। घने जंगल का ऊबड-खावड़ रास्ता जिसमें

चलना दूभर-सा लग रहा था। जगल का घना सन्नाटा भयभीत कर रहा था तब भी वह उत्साह मे आगे बढ़ती जा रही थी। जानवरो की आंखों पर जब सर्चलाइट का उजाला पडता तो शीशे की तरह चमकती थीं। बैटरी पकड़े हुए आदमी महिम के साथ था। चीतल, सांभर और नीलगाय का भयंकर काला शरीर चांदनी में साफ दिख रहा था। महिम ने उसे और दो-चार आदमियों को, जो पानी का घडा उठाये थे और जानवर उठाकर ले जाने वाले थे, रोक दिया। उनके साथ उसे भी ठहरना पड़ा।

थोड़ी देर में फायर की आवाज आयी और जानवरों की दौडने की आवाज आयी। उस आवाज से लग रहा था मानो भूकम्प आ गया है। महिम थोड़ी देर में हांफता-सा लौटा।

"एक सांभर और दो चीतल मरे।"

"सच !" जाने क्यों उसे प्रसन्नता-सी हुई।

बाकी लोगों को वही छोड़ वे लोग पटवारी के साथ लौट आये। जंगल मे करीब डेढ-दो मील चलना पड़ा था, उतना ही लौटना हुआ था, इसलिए थकान लगने लगी थी, जांघें भर आयी थीं।

जीप में वह लेट गयी और उसी टूटी खाट पर महिम लेट गया। महिम आखो पर कोहनियो का भार देकर शायद सो गया था, पर उसे नींद नही आयी। अजनबी खुले जगल की जगह मे सोते उसे अजीब-सा लग रहा था। थोड़ी देर में सब लोग जानवर उठाये आ गये और बस के पास ही लालटेन की रोशनी में जानवर को छीलने और काटने का काम करते रहे। वह आखें खोले उन्हें फुर्ती से जानवर की खाल उतारते और काटते देखती रही। सभी उत्साह में थे।

जानवर की खाल पर नमक लगाकर बस की छत पर फैला दिया गया था। रात को ही वे लोग आपस मे बंटवारा करके मांस ले गये और बाकी मांस को मुन्नीलाल ने बस की छत पर हवा में फैला दिया था। रात को कच्चे मांस की खुशबू से दो-तीन बार बिल्ली आयी और मांस खोजने बस

के ऊपर चढ़ने लगी, पर हर बार मुन्नीलाल ने उसे भगा दिया।

उसे शायद झपकी आ गई थी, मोर की आवाज से वह जाग पड़ी। देखा, सब लोग थके-से सो रहे थे। पर महिम जाग गया था और उसे निहार रहा था। वह सकुचाकर उठ बैठी। महिम की आंखें उसे निर्वस्त्र कर रही थीं।

"देवीजी, रात को सोयी भी या डर के मारे सारी रात जागती रहीं!"

"ओह! ऐसे भयानक सन्नाटे मे कहीं नींद आयेगी? मैं तो बाबा जागती ही रही।"

"मुझे पास बुला लिया होता।"

उसने झेंपकर सोये दूसरे लोगों को देखा। मुन्नीलाल पास ही सोया था, उसे लगा वह जाग गया था और पड़ा-पड़ा उन लोगो की बातें सुन रहा था। उसने महिम को इशारे से मुन्नीलाल की ओर दिखाया, महिम मुस्करा दिया।

"क्यों यार मुन्नीलाल, हमारे हिस्से का बचाया या रात को ही खा गये?" महिम ने जान-बूझकर कहा।

"कहां साहब, सारी रात तो काटने और छीलने मे बीत गई, फिर बिल्ली की निगरानी करनी पड़ी।"

"और अब हमारी कर रहे हो?"

मुन्नीलाल झेंप गया। मुन्नीलाल का चेहरा देखकर उसे जोर से हंसी आ गयी।

थोड़ी देर मे सभी जाग गये। पटवारी के घर से पीतल के गिलास मे चाय आयी। मुन्नीलाल ने खाल और मांस उतारकर पत्तों से ढंक जीप में पीछे रख दिया। जब वे लोग वापस गंगडन के लिए चले तो तांबे की-सी धूप झाड़ियों पर फैल गयी थी। काकजू के दोनों आदमी बस से लौट गये।

दोपहर में खाने के बाद ममी सामने वाले कमरे मे सो गई थी। पूरा बंगला गर्मी से तप रहा था। दाएं कमरे में बिजू औंधी पलंग पर पड़ी थी। बिजू के सोने का ढंग ही यही है। वह नीचे बिछी दरी पर लेटी महिम के

बैग से 'फिल्मफेयर' का नया अंक निकालकर पढ़ने की कोशिश कर रही थी, पर पत्रिका में ध्यान जम ही नही रहा था। पहाड़ी इलाके मे जैसे दोपहर ज्यादा उदास होकर आयी थी। सामने खुले दरवाजे से बाहर रसोई का काफी भाग दिखता था।

मोविन जब से गंगडन आया है उसने अपने-आपको रसोई मे ही बांध लिया है। वही वह सोता है और दिन का बचा समय वही रहकर गुजार लेता है। कल बिजू कह रही थी, "उमी, मोविन गन्दी पुस्तकें पढ़ता है।"

"तुझे कैसे मालूम ?" उसने आश्चर्य से पूछा था।

"मैं मोविन को एक कप चाय बना देने को कहने गयी थी। वह कमरे में नही था। जमीन पर दरी बिछी थी, वही पर एक पुस्तक कवर चढ़ी रखी थी। जानती हो वह पुस्तक क्या थी ? कोक-शास्त्र।" बिजू ने रुककर उसे देखा था, फिर अचानक पूछा था, "उमी, कोक-शास्त्र में कौन-सा शास्त्र लिखा होता है ?"

"मैं क्या जानू, तू जान बाबा, तू ही सब की जासूसी करती फिरती है, तुझे ही मालूम रहता है कि गन्दी पुस्तकें क्या होती है।" उसने झुझलाकर जवाब दिया था और बीजू शरारत से मुस्करा दी थी।

अभी भी रसोई का दरवाजा भिड़ा था। कौन जाने आज भी मोविन किवाड भिडाकर गन्दी पुस्तक पढ रहा हो। ममी से कहकर उसकी शादी करवा देनी चाहिए, अठारह का तो हो गया है। बाप रे, जाने यह लोग इतनी कम उम्र में गन्दगी की ओर कैसे बढ जाते हैं ?

महिम अभी तक नही लौटा था। नाश्ते के बाद से ही वह तसवीरें उतारने चला गया था। महिम की फोटोग्राफी की नौकरी अच्छी है, घूमने को अलग मिलता है और नौकरी जैसा लगता भी नही। महिम की कितनी तसवीरों मे वह है, पर कौन जानता है कि यह वह है। नेगेटिव की तरह ही उसका पिछला धुधला गया है। अब उन बातों को भी तीन वर्ष बीत चुके हैं। उस दिन दूर की ननद अचानक उसे मिल गयी, और 'भाभी' कहकर पुकारा तो उसे अजीब-सा लगा था। भूले शब्दों की

ध्वनि पराई-सी लगी थी। कॉलेज के समय में भी वह सिर्फ सोने की पतली दो चूड़िया और घड़ी बांधती थी, और अब भी वैसी ही रहती है। वह तो भूल-सी गयी है कि कुछ दिनों तक वह हाथ भर-भरकर कांच की खनखनाती चूड़ियां पहनती थी। चूड़िया, भरे वे हाथ पहले उसके थे या पराये? अपने हाथों की तो अब उसे याद ही नहीं।

पी० डब्ल्यू० डी० के खाली ड्रमों के पीछे परछाईं उभरी और महिम के जूतों की आवाज बरामदे में आयी। वह ठीक से सोच भी नहीं पायी थी कि उठकर बैठ जाये या लेटी रहे, तभी महिम तेजी से कमरे में आ गया। ड्रेसिंग टेबिल पर थर्मस और कैमरा रखकर वह फुलपैंट के अन्दर खुची कमीज को बाहर निकालता बाथरूम में चला गया। रसोई से मोबिन प्लेटों में खाने का सामान रखे आता दिखा, शायद उसने महिम को आता देख लिया था। ड्रेसिंग टेबिल पर ही खाना लगाकर चला गया। बाथरूम से जोर-जोर से पानी फेंकने की आहट आती रही।

महिम बाथरूम से निकलकर तौलिया लपेटकर दरी पर बैठ गया। उसके बालों से पानी चू रहा था।

"भूख लगी है, खाना यहीं दे दो न प्लीज !"

उसके खाना रखते ही महिम हड़बड़ी में प्लेटें खोलने लगा।

"अरे, यह तो खाली गोश्त की तरकारी है !"

वह लजा-सी गई, जैसे मोबिन ने खाली तरकारी रखकर यह जाहिर कर दिया था कि वे लोग खाली गोश्त भी खा लेते हैं।

"था भी तो कुछ नहीं, यहां रमजान में सब्जी कहां मिलती है।"

"मैं खाली चीजें नहीं खाता," महिम ने तरकारी की प्लेट परे सरका दी, "तुमने खा लिया?"

"हां।"

"मेरी बीवी बनोगी तो इन्तजार करना पड़ेगा। लो, आधी रोटी खाओ।" महिम ने जबर्दस्ती आधी रोटी का बड़ा-सा कौर उसके मुंह में ठूंस दिया। वह अकबका-सी गई।

रात को चांदनी काफी निखार पर थी। ममी के कहने पर मोविन सबके बिस्तर बाहर लॉन में लगा रहा था। महिम का बिस्तर सुन्दर और साफ था। सफेद छोटे-छोटे फूलों वाली चादर थी। उसे कहीं पढ़ा वाक्य याद आया—नारी की रुचि घर के परदों से पता लगती है और मर्द की रुचि पलंग पर बिछे साफ-सुथरे बिस्तर मे।

वह लेटी थी। महिम बिजू को बता रहा था कि, "ऐसे पहाडी इलाके में वह जब भी सोता है, अपनी बन्दूक को अपने गद्दे के नीचे रखकर सोता है। असली शिकारी की पहचान भी यही है। बन्दूक हमेशा सोने के समय सौतेला भाव रखती है, जाने कब अपनी ही बन्दूक अपनी छाती के सामने हो।"

"तो आप अपने-आप को असली शिकारी साबित करना चाहते है?"

"क्यों, तुम्हे अभी भी शक है क्या?"

वह लेटे ही लेटे हंस दी।

उसे लगा कोई उसे जगा रहा है। चौककर उसने आंखें खोली, साफ चांदनी मे महिम की झुकी हुई मूर्ति स्पष्ट दिखी।

"बिना आहट किये मेरे साथ आओ, नीद नही आ रही है।"

निस्तब्ध चांदनी थी, बौराई मौन खामोशी। वह आश्चर्य मे भरी उठ गई। सब लोग सो रहे थे। महिम धीरे-धीरे चल रहा था, तब भी खुरदरी मुरम में चप्पलों की चरमराहट साफ सुनायी दे रही थी। दोनों रसोई के सामने वाले भाग से ढलान पर आ गये। अब महिम रुककर उसका रास्ता देख रहा था।

"अभी तो रात नही बीती शायद, मुझे क्यो उठाया? कोई देखे तो क्या सोचेगा?"

"तुम क्या इस सुन्दर पहाड़ी इलाके मे सोने आयी हो! बाध के ऊपर छत पर बैठकर सुबह होने का इन्तजार करेंगे, और क्या?"

ढलान मे कई जगह महिम ने उसे सहारा दिया। दोनों डैम के ऊपर बनी छत पर चले गए, यहा से बैठकर आसानी से दूर तक के दृश्यों को

देखा जा सकता था। दोनों सीमेंट की बेंच पर न बैठकर नीचे फर्श पर पैर लटकाकर बैठ गये। उसे सन्नाटे से और महिम से डर लग रहा था। दायीं ओर छोटी-छोटी दो नावें बंधी थी।

पलकोहा मे केन का पानी स्वतन्त्र था पर यहा पर उसकी स्वतन्त्रता को जैसे कैद कर दिया गया था। पलकोहा मे केन पूर्ण सुहागिन, गर्भवती यौवना-सी लगी थी, पर यहा वह विरहिणी और बन्दिनी-सी लग रही थी।

महिम ने उसे अपनी बाहो मे लेना चाहा, पर वह पहले ही सतर्क थी, छिटककर दूर हो गयी। महिम रूठा-सा रेलिंग पर कोहनी टेककर बैठ गया, वह भी उसके पास बैठ गयी।

"तुम्हें कभी लिखना अच्छा लगता है, उमी?" थोडी देर बाद महिम ने अचानक पूछा।

"हा, कई बार कोशिश की पर विचार इतनी तेजी मे आते रहे कि कलम साथ नही दे पायी। फिर मुझे लिखने से सोचना या समझना, मन मे सोच-सोचकर दोहराना अच्छा लगता है।"

"मेरे साथ भी यही है, मुझे एकान्त में बैठकर सोचना या पिछली बातों को याद करते रहना अच्छा लगता है। तुम क्या समझती हो लेखक जो भोगता है, पूरा लिख पाता है? नही, चाहे उसकी कलम कितनी भी सतर्क क्यो न हो, फिर भी बहुत-सी बातें लिखने से छूट जाती है। चाहे लेखक कितना भी बनिया रहे पर उसके मस्तिष्क की तिजोरी मे हमेशा कम बातें कैद रह जाती हैं, जो खुद उसे पता नही होतीं। जब वह अकेला होता है, हाथ में कलम भी नही होती तब ये बातें धीरे-धीरे उसके मन को कुदेरती रहती हैं।"

"ऐसे कह रहे हो मानो तुम लेखक हो।"

"मेरे कई दोस्त लेखक हैं, वही कहते रहते है।" महिम सीधा होकर फर्श पर लेट गया और किसी याद आती पंक्ति को गुनगुनाने लगा। वह शान्त होकर सुनने की चेष्टा करती रही। पर शब्द इतने धीमे थे कि पकड़

में नहीं आ रहे थे।

अचानक महिम के गर्म होंठों का स्पर्श उसे अपनी गर्दन पर लगा। अबोध शिशु-सा महिम मचलकर उसे अपनी ओर खींच रहा था। उसे लगा, वह महिम के प्रति स्नेह-ममत्व से उमड़ी जा रही है। वह शायद मौन स्वीकृति भी दे डालती, पर तभी पास कहीं से मोर के जोर से चिल्लाने की आवाज ने उसे सतर्क कर दिया।

"तुम बहुत निष्ठुर हो !" महिम ने अपनी पसीने से तर हथेलियों को उसकी बाहों पर से हटा दिया।

महिम के शब्द उसे चुभ गये।

उजाला धीरे-धीरे हो रहा था। विन्ध्या चिडियो के शोर से गूंज रहा था। जगली तोतों का झुण्ड केन के ऊपर से उड रहा था। जंगली चिड़ियों का शोर बढ़ रहा था। रंग-बिरंगी चिडिया—हरियल, श्यामा, मैना, तोता और जाने क्या-क्या केन पर से उड रहे थे। यहां से मुड़कर देखने पर सर्किट हाउस दिखता था। एक सूखे पेड़ पर, जिसका तना काट दिया गया था, दो-तीन चील बैठी चारों ओर सतर्क दृष्टि से देख रही थी।

"उर्मी !"

"..."

"देव के साथ तुम्हारा गृहस्थ-जीवन सुखी था ?"

अचानक पूछे जाने वाले इस प्रश्न से वह सिहर-सी गई। उसे लगा, महिम ने जान-बूझकर उसे चोट पहुचाने की गरज से ही ऐसा प्रश्न पूछा है। वह कठोर बनी चुप रही।

"मुझे गलत नहीं समझना उर्मी, मन में प्रश्न आया और मैंने पूछ लिया।" महिम ने उसके हाथ को दबाते हुए कहा।

"ऐसा क्यों पूछ रहे हो महिम, मेरा कुछ भी तुमसे छिपा नहीं है। तुम जानते हो देव मुझे बहुत प्यार करते थे। अगर अकस्मात एक्सीडेंट में उनकी मृत्यु न हो गई होती तो कौन जाने मैं आज से ज्यादा सुखी

रहती।"

"तुम मुझे भी उतना ही प्रेम करती हो जितना देव से करती थी?"

वह सुन्न-सी पड़ गई। महिम उसके चेहरे के उतार-चढ़ाव को देख रहा था। उसे महिम का वह रूप अच्छा नहीं लगा। महिम इतने कठोरता-भरे प्रश्न भी कर सकता है, इसकी उसने कल्पना भी नहीं की थी। उसे याद आया एक मित्र ने उससे कहा था, औरत से ज्यादा मर्द ईर्ष्यालु होता है। अचानक उसे पिछली दोपहर को कहे महिम के शब्द याद आये—'मैं बासी चीजें नहीं खाता।'

उसकी आखें भर आयी।

"खैर, छोड़ो। चलो, काफी समय बीत गया है।"

महिम उठकर जाने लगा, उसके पीछे वह भी उठी। सुबह की शुरुआत इतनी बुरी होगी उसने सोचा भी नहीं था। महिम आगे-आगे जा रहा था। महिम के इस व्यवहार से उसे दुःख हो रहा था। महिम को उसने धोखे मे तो रखा नही था, सारी बातें एक-एक खोलकर उसमे बता दी थी।

वह मन और तन दोनों से थक गयी थी। चढ़ाई चढते मे उसकी जाघें भरने लगी थी। घुटने शरीर का बोझ उठा नहीं पा रहे थे। वह दोनों हाथो को घुटनो पर रखकर सहारा दे-देकर चढ़ने लगी।

सब जाग गये थे। बीजू अभी भी पलंग पर लेटी थी। दोनो खाली कुर्सियों पर बैठ गये। तभी मोविन चाय की ट्रे ले आया। उसने कई बार महिम को देखा, पर महिम चुपचाप नीचे देखकर चाय पी रहा था।

बिजू की चालाक दृष्टि दोनो के चेहरो के भाव को ताड़ गयी थी। उसे मन-ही-मन घबराहट होने लगी, वह चेहरे के भाव को छिपाने की चेष्टा करती रही। महिम अन्दर कमरे में जाता तो वह सब छोड़कर उससे लिपट जाती और उसे मना लेती, पर महिम बहुत गंभीर-सा बैठा था। उसे आश्चर्य हो रहा था—वही बात जो महिम को मालूम थी, आज दोहराने पर उसे बुरी क्यो लगी?

तभी सामने चौकीदार दिखा। महिम ने उसे बुलाया।

"क्यों, नीचे पहुंचने के लिए वह बस अभी मिल जायेगी ?"

"जी हा, थोड़ी देर मे वह सड़क के मोड़ पर आयेगी, गगडन की सवारी लेने।"

सबके चेहरे पर आश्चर्य था। उसे जोर से रुलाई आने लगी। ममी और विजू ठगी-सी दोनों को देख रही थीं। मोबिन खाली प्याले उठाकर ले गया।

"ममी, मुझे कुछ गांव के अन्दर जाना है, तसवीरें पूरी करनी हैं। विजू बढ़िया जीप चला लेती है, मैं इस बस से चला जाता हूं, वही घर पर मुलाकात होगी।" महिम उठकर अन्दर चला गया।

उसका चेहरा सफेद पड गया। महिम इतनी जल्दी उससे अलग होना चाहेगा, इसकी तो उसे कल्पना भी नही थी।

अन्दर महिम, मोबिन को बिस्तर बाधने को कह रहा था। उसके पैर पत्थर के हो गये, वह चाहकर भी उठ नही पा रही थी। हिम्मत करके वह उठी। अन्दर कुर्सी पर पैर रखे महिम जूते के बन्द बांध रहा था। वह देर तक दरवाजे पर खड़ी रही, फिर अन्दर चली गयी।

"महिम, क्या इतनी जल्दी सम्बन्ध तोड़े जा सकते है ?"

"मैंने तो यह प्रश्न उठाया ही नही। दो दिन की तो बात है, फिर घर पर मुलाकात होगी। तुम बेकार का बहम क्यों पाल रही हो ?"

मोबिन बिस्तर बाध चुका था, महिम ने जाते-जाते उसकी पीठ पर हाथ रखा और दरवाजे से बाहर हो गया। वह कांपती मूर्ति की तरह खड़ी रही। महिम जाते-जाते तसल्ली दे गया था, पर वह खूब समझ रही थी महिम की चालाकी को। शायद यह भी नारी-दृष्टि थी जो ताड़ गयी थी कि महिम तसल्ली दे नहीं रहा है बल्कि हमेशा के लिए विदा ले रहा है।

चुटकी भर समर्पण

-ताल पर पड़े सूरज की परछाईं से देह को ताप नही मिलता।

रात के मन्नाटे मे खिचती दूर तक चिघाड़ती पागल औरत-सी बौराई भटक रही थी। हॉल का दरवाजा जो जाते-जाते नर्स खुला छोड़ गयी थी, उससे दो-चार कुत्ते भीतर आ गये थे और बड़ी तेज़ी से एक-एक पलंग के नीचे कुछ सूघते आगे बढ़ रहे थे। कुत्ते, जिनके मुह मे ताज़ा खून लग चुका था।

कुत्ता उसके बहुत निकट आकर सूघकर चला गया, वह भयभीत-सी पड़ी रही। सारे पलंग पर एक मौन चुप्पी थी। ऑपरेशन-टेबिल पर पड़े-पड़े वह देख चुकी थी, ट्रे मे पेट से निकले खून के लोथड़े दाई बाहर डाल रही थी जिसे बड़ी ही तेज़ी और बेरहमी से कुत्ते खा रहे थे। अस्पताल के अहाते में अपने-आप पले ये कुत्ते भेड़ियों-से थे, जो औरत के खून के इंतज़ार में थे। औरत के खून की गंध इनके नथुनो में समा गयी थी, इसलिए ज़रा-सा दरवाज़ा खुला पाते ही हॉल में घुस आते और पलंग के नीचे सूघते भटकते थे।

सारे पलग जो थोड़ी देर पहले दर्द से व्याकुल इधर-उधर छटपटा रहे थे, अब नीद के नशे में थे।

सिर्फ उसकी आंखों मे नीद नही थी, व्याकुलता उसे तड़पा रही थी। चीख-चीखकर उस सूने हॉल मे अपने आप से पूछना चाहती थी, उसका

भाग्य किसने लिखा ?

बाहर शायद पानी बरसने लगा था। ठंडी हवा से सिहरकर उसने अस्पताल का लाल कंबल ऊपर खींच लिया, पता नहीं इससे पहले कितनों ने इसे ओढ़ा होगा। पेट विचित्र खालीपन से भर गया था, कमर पलंग पर टिक नहीं पा रही थी। वह चाह रही थी, औंधी हो जाये तब नींद आये। पर औंधे होने का प्रश्न नहीं था, अभी आधा घंटा भी तो नहीं बीता था, जब उसे यहां पलंग पर लाकर डाला गया था।

उसने अपने पैर सिकोड़कर मोड़ लिये, क्योंकि पलंग पर पायताने मां आकर बैठ गयी थी। कितनी दुबली हो गयी थी वह, उसने अचानक महसूस किया।

बाबूजी सोये नहीं थे, क्योंकि बार-बार उनके चलने की आहट मिल रही थी। सड़क पर कोई भी साइकिल आती-जाती तो वह झट खिड़की से झांकते या बाहर बरामदे में चले जाते। शायद ! अजीब भारी-भारीपन उस घर के कोने-कोने में बस गया था।

"देख रही है, पाखी !" अचानक कमरे से निकल उसके पास आते बाबूजी बोले, "यही हाल है, लड़के आफ़िस से सीधे घर आते हैं और यह लाट साहब हैं कि घर नहीं लौटता। अब ग्यारह से पहले नहीं आयेगा। उसे इतना भी खयाल नहीं कि तू आयी है। कम से कम तुझे घुमाना है। पिक्चर ले जाना चाहिए, पर नहीं, जनाब को क्यों याद रहेगा ?"

"जाने दीजिये बाबूजी, मुझे तो वैसे भी घूमने का शौक नहीं।" वह वार से जैसे बचना चाहती हो। वह जानती है बाबूजी उसे टारगेट बनाकर अपनी भड़ास निकालना चाहते हैं। उसकी आड़ लेकर अपनी बात कहना चाहते हैं। वह साफ़-साफ़ यह बात नहीं कहना चाहते कि मां-बाप के लिए भी बेटे के कुछ फर्ज है। इस बात को उनका स्वाभिमानी मन कहना नहीं चाहता पर अपनी उपेक्षा उन्हें सहन नहीं हो रही थी।

बाबूजी पल-भर को उसके सामने ठहरते हैं, फिर लौटकर कमरे में

चले जाते है।

"आजकल वह एक लडकी के चक्कर मे है। तू ही बता, यदि वह इस लडकी से फंस गया तो समाज में कितनी किरकिरी होगी?" मां पैर ऊपर कर उसके पास खिसक आती है।

"तू ही बता, उन लोगो से मेरी ज़िंदगी-भर पटरी नही बैठी...और यह लड़का उन्ही के पर घास चर रहा है।" मा उपेक्षा से बताती है—"तू *कहती है वह तनखा का एक-एक पैसा देता है? नही, एक धेला यहां नही* देता। अभी से यह हाल है तो यह हमे बाद में क्या पालेगा?"

"अरे, बात-बात मे अलग होने की धमकी देता है।" बाबूजी फिर कमरे मे आते बोलते है, "बता, अगर वह अलग हो गया तो लोग उस पर तो उगली नही उठायेंगे, मुझे ही कहेंगे न?

तभी बाहर साइकिल की आहट हुई और बाबूजी जल्दी से अपने कमरे मे चले गये, मां भी जल्दी से उठकर अपने बिस्तर पर दीवार की *ओर करवट कर लेट गयी मानो सो गयी हो।*

सामने का दरवाज़ा खुला और कैलाश अन्दर आया। वह वैसे ही पलंग पर बैठी रही, पहले की तरह। कैलाश भडभड़ाता भीतर आया और उसे पलंग पर बैठा देख थोड़ा चकराया...जैसे उसे अचानक ध्यान हो आया हो कि वह यहा है। उसके चेहरे का तनाव कुछ ढीला पड़ा—"अरे, तुम *सोयी नही?"*

"न, तुम कहा से आ रहे हो? चलो, खाना खा लो।" उसने पूछा, पर उसे मां पहले ही बता चुकी थी कि वह रात का खाना खाकर आता है।

"नही, खाना दोस्त के घर खा आया हूं।" कैलाश कन्नी काटकर अपने कमरे में चला गया।

कैलाश के आने से पहले जो मां और बाबूजी गुस्से से फनफना रहे थे, अब उसके घर लौटते ही जैसे दोनों को सांप सूघ गया हो। क्या वे लोग कैलाश से भय खाने लगे हैं?

वह बिस्तर पर सीधे होकर लेट गयी। शाल को उसने छाती तक

जोड़ लिया। रात कैसे कटी उसे पता नहीं चला, वह यहां अपने दुख बताने आयी थी पर यहां तो सबके पास इतने ढेर दुखों की लिस्ट है कि उसकी व्यथा कौन सुने?

सुबह वह देर से कमरे में पड़ी थी। पलंग से नीचे उतरने की ज़रा हिम्मत नहीं हो रही थी। सारी रात आंखों में कटी थी और रात-भर जागा शरीर अब जैसे विद्रोही हो गया था।

वह बिना हिले-डुले औंधी चुप पड़ी थी, ठीक उसी तरह जिस तरह अकसर गर्मी के दिनों में छिपकली छत पर उलटी लटकी होती है, बिना सांस लिये, बिना आहट किये, निर्जीव-सी...बस एकदम उसी तरह!

अचानक कमरे में रोशनी हुई और उसने अचकचाकर आंखें खोल दीं, तब उसे पहली बार महसूस हुआ कि आंखें रो लेने के बाद तो दुखती हैं, पर बिना रोये भी कभी-कभी उसी तरह दुखती हैं, वैसा ही आभास देती हैं।

तिथि को सामने पाकर वह जैसे भय खा गयी और न चाहते हुए भी जैसे तिथि उसकी मन:स्थिति को ताड़ गयी। पलंग के नीचे उतारी उसकी चप्पल को स्टैंड में रखती बहुत व्यस्त-सी वह बड़बड़ायी—"पता नहीं इस घर को क्या होता जा रहा है। सारी चीजें अस्त-व्यस्त होती जा रही हैं। यहां तक कि घर के लोग भी अस्त-व्यस्त होते जा रहे हैं। आखिर मैं अकेली कब तक समेटूं? कल दूसरे घर चली गयी तब?"

तिथि के ये वाक्य बड़े पुराने हैं। बचपन से ही वह इसी लहजे में बोलती थी। छुटपन में फ्रॉक पर मां की साड़ी लपेटे वह एक बांह से गुड़िया को समेटे, दूसरी में झाड़ू लगाते अकेले-ही-अकेले खेलती बड़बड़ाती रहती थी—"समझ में नहीं पड़ता कहां तक घर को संवारूं? काम करते-करते तो मेरी कमर टूटती है, मर गयी तो कौन काम करने आयेगा?"

उसकी यह बातें सुनकर दादाजी आश्चर्यचकित रह जाया करते थे। उसे दोनों बांहों से हवा में उछालते कहते—"तू तो मेरी मां है...सच, वह

भी वैसा ही बोलती थी।"

"दीदी, तू उठेगी या नहीं ?" तिथि ठीक उसकी आंखों के सामने आ खड़ी हुई।

"तू पुरखिनों-सा बोलना कब छोड़ेगी, रे ?" वह उठकर बैठ गयी और गोद में तकिया रख उस पर दोनों हाथ पसार लिये।

"दीदी, जिसके भाग्य में जो होता है, वही होता है। मैं तो बचपन से एकदम बुढ़ापे मे छलांग लगा गयी हूं। भला बता, अब अपने समाज में है कोई बड़े दिल वाला लड़का जो तीस साल की लड़की को ब्याह ले ?" तिथि उसके पास बैठ गयी।

"क्या बात है, आज तेरे मुह से यह बात सुनकर विचित्र लग रहा है। तू तो घर-भर पर शासन करती थी, आज बेटी के लहजे मे कैसे बोल रही है ?"

"वह दीदी आज राजेंद्रजी मिले थे ?" तिथि ने झट आंखें नीची कर ली।

"क्या ?" वह आश्चर्य से फैल गयी—"कहां मिले थे ? क्या कह रहे थे ? कैसे लगते हैं अब ?" उसने ढेर सारे प्रश्नों को उसकी आंखो में परोस दिया।

"बात तो कुछ नहीं हुई...हां, मोटे हो गये हैं। कनपटी के बाल भी पक गये हैं। मुझे देखा तो पहचानी नज़रों से देखते रह गये। काफी बीमार-से रहते है। कोई बता रहा था उनकी पत्नी की मृत्यु हो गयी है तथा बड़ा लड़का लड़ाई मे मारा गया।" तिथि पलंग पर पसर गयी— "तब से दीदी उनका चेहरा आंखों के आगे से हटता नहीं। मुझसे कह रहे थे शाम की ट्रेन से जाऊंगा, आना।" तिथि चुप हो गयी यकायक।

उसे भी ज्यादा कुरेदना अच्छा नहीं लगा। दस वर्ष पहले, तब तिथि कॉलेज में पढ़ती थी और राजेंद्र प्रोफेसर था। राजेंद्र पहले से ही शादीशुदा था, पर उसने यह बात तिथि को नहीं बतायी। दोनों की बढ़ती पहचान जब हर सीमा को लाघ गयी, तब एक दिन पानी में तैराई कागज की नाव

भीगकर विलीन हो गयी, तो तिथि बौखलाये बच्चे की तरह किनारे पर हाथ झटकती रह गयी। वह दिन और आज का दिन, तिथि ने राजेंद्र का नाम नहीं लिया। उसे कभी क्षमा नही किया।

आज सुबह से कमरे में एक गोरैया भटक रही है। लगता है वह अपना घर भूल गयी है, या उसे घरवालों ने अलग कर दिया है। कभी वह सोफे पर बैठती है, कभी खिड़की की जाली पर, कभी परदे पर, कभी टेबुल-लैंप पर और कभी एकदम उसके सामने ही खाट पर। आश्चर्य होता है कि यह चिड़िया उसके इतने पास आकर कैसे बैठ जाती है? उसे भय नहीं होता? शायद जब मन ज्यादा परेशान होकर भटकता है, तब भय खत्म हो जाता है। क्या इस भटकती चिड़िया को छाव-ठौर कहीं नहीं मिलेगा?

"तुम देखो, दीदी!" कैलाश उसके साथ दुकान से बाहर निकलते बोलता है, "मा और बाबूजी सोचते हैं मेरी आदतें बिगड़ गयी हैं, मैं गलत रास्ते पर जा रहा हूं!" अगर ऐसा होता तो क्या मैं अलग नहीं रह सकता था? बाबूजी आज हमें आदर्शों का डोज़ पिलाते है, पर कोई उनसे पूछे कि उन्होंने क्या अपने जीवन में गलत काम नही किये? हम सब जानते हैं··· पर उन्हें दोहराने से फ़ायदा?"

वह चुप-सी सड़क के किनारे खड़ी थी। उसके हाथ में जो कपड़ों का पैकेट था उसे उसने कसकर पकड़ रखा था जैसे इस समय वह ही उसके लिए सहारा हो। दोनों रिक्शा के इंतज़ार में खड़े थे।

"दीदी!" कैलाश फिर बोलता है, "आज तिथि की शादी क्यों नहीं हुई? उसकी इतनी उम्र हो गयी, पर बाबूजी और मा को ध्यान है? तुम्हारे साथ इन लोगों ने क्या किया? तुम्हें बकरी की तरह कहीं भी बांध दिया, फिर तुम्हारे दु:ख-सुख पूछे? शायद पूछने से भी डरते हों कि पूछकर कौन मुसीबत मोल ले? इनके पास समय कहा है बच्चो के दर्द, तकलीफ़ें जान लें! इन लोगो ने हम लोगो के लिए क्या किया, जो आज ब्याज समेत मागते है। बस सारी जिन्दगी अपना रोना रोते रहे। मां

बाबूजी के खिलाफ बोलती रही और बाबूजी मां के खिलाफ। उनके पास बच्चों की तकलीफें जानने का समय कहा...

"ठीक है, मेरा अगर कहीं सम्बन्ध है भी तो कोई मैं उसे घर तो नही ला रहा या खुद घर से भाग तो नहीं रहा...? मेरी उम्र अब इतनी हो गयी है कि मैं अपना भला-बुरा खुद सोच सकता हूं।"

घर से चलते समय मा ने उसे चुपचाप कितना समझाया था कि कैलाश को तू यह कहना, वह कहना, उसे यह उपदेश देना, वह उपदेश देना। पर वह ऐसे चुप है जैसे कुछ जानती न हो। मा ने बहाने से उसे कैलाश के साथ भेजा था ताकि वह अकेले मे उसे समझा सके। पर वह क्या कैलाश को समझा सकती है ? कैलाश क्या झूठ कह रहा था ?

मा और बाबूजी ने कभी उनकी बातें जानने की कोशिश की ! बस सारी ज़िन्दगी अपना-ही-अपना कहते रहे।

"तिथि, शाम हो गयी, स्टेशन नही जायेगी ?"

"क्यों ?" तिथि ने अनजान बनते हुए पूछा।

"क्यों, राजेन्द्र बाबू की ट्रेन है न ?"

"जाने दो दीदी, वह मेरे क्या लगते है !" तिथि ने पुस्तक बन्द करते हुए कहा—"कल उनका समय बलवान था, आज मेरा।" कहते हुए तिथि ने श्मशान-सी सूनी आखें उठाकर उसे देखा, मानो पूछ रही हो—"सच कहो दीदी, क्या राजेन्द्र मेरा कुछ नही लगता ?"

वह चुप रह जाती है। यहा सबके पास अपनी बाते है और वह इनसे अपनी बात कहने आयी थी ?

मनीप को वह कितना जानती है ? अनायास मिले थे दोनों। मनीप घर से निकला था एक पल को खरीदने और वह घर से चली थी सारा जीवन खरीदने ! बस यही पर दोनो की टकराहट होती थी। मनीप जिसका पेट घर मे नही भरता था और वह जिसे खून की हर बूद चाहिए थी। विश्वास, रिश्ते, प्यार, अपनत्व और सुरक्षा—इतनी सारी चीजें वह सिर्फ़ एक जगह

से चाहती थी। सिर्फ़ मनीप से...! वही मनीप जो अपनी गृहस्थी से, अपने परिवार से बेहतर जुड़ा था, जो बात-बात में टुकड़ों मे अपनी गृहस्थी की बात बताता था। जो लोग सेक्स की तलाश में घर से बाहर निकलते हैं उन्हे कभी सामने वाले पर विश्वास नहीं होता। जो लोग पेट-भर खाने के आदी हों उन्हें क्या पता कि दुनिया में ऐसे भी लोग हैं, जो मुट्ठी-भर भीख में पाये भोजन को ही खाकर तृप्त हो जाते है।

मनीप के साथ सम्बन्ध बनाये मुश्किल से दो माह ही बीते थे जिसमें मुश्किल से दो-चार मुलाकातें ही हुई थीं कि उसे लगने लगा था वह मां बनने वाली है। जिस कलंक को वह पिछले दस वर्षो से अकेली ढोती आ रही थी आज वह झूठा साबित हो गया था। इस बात ने जहां उसे आश्चर्य-चकित कर दिया था, वहीं मन में प्रसन्नता का अंकुर भी फूटा था। पर मनीप को विश्वास नही हुआ। सही भी था। अभी तो दोनों एक-दूसरे को समझ रहे थे, तौल रहे थे। सम्बन्धों में उतनी गहराई नही आयी थी। यहां तक कि मनीप के सामने ठीक से खुल भी नही पायी थी और ऐसे में गर्भ रह जाना! मनीप के लिए विश्वास करना मुश्किल हो गया था कि वह बच्चा किसका है? उसका या उसके पति का?

वह भाग्य की विडबना के चक्र के साथ घूम रही थी, उसको पत्नी बने दस साल हो गये पर वह मां नही बन पायी और जब दोनो के बीच पति-पत्नी के सम्बन्ध उस स्थान को पहुंच गये थे जैसे बरसों से साथ रहते मुसाफिरखाने में पहचान हो गयी हो। पति-पत्नी के रिश्तों के बीच शारीरिक सम्बन्ध भी होता है, यह बात वे दोनों भूल चुके थे। तब ऐसी दशा मे मनीप का इस तरह कहना उसे गहरे तक अपमानित कर गया।

"कैसे विश्वास कर लूं? कही ऐसा होता है कि पति पत्नी के पास सालो नही आये?" मनीप ने कहा था, और वह पथरायी आखों से मनीप को निहारती रह गयी। वह आदमी उसकी पहुंच से कितने परे है?

उस दिन घर पर एक मिट्ठूवाला बैठा था। तिथि चार आना उसके लिफाफे पर रखकर अपना भाग्य पढवा रही थी। मिट्ठू पिंजरे से निकल-

निकलकर अपनी चोंच से एक-एक लिफाफा अलग कर रहा था। वह खिडकी से यह सारा कुछ देख रही थी। शायद सच है...अब ईश्वर के हाथ से भाग्य की बागडोर निकलकर इस बेजुबान तोते के पास आ गयी है। अपने मालिक के डर से वह किस खूबी से दिन भर मे सैकड़ो लोगों के भाग्य देखता है और आदमी जानकर-समझकर भी उससे यह काम करवाता है। पता नही कौन किसको बेवकूफ बनाता है या कौन बेवकूफ है !

खुद उसकी इच्छा थी अपनी बात घर पर कह दे। पर न, वह जानती है *उसे अपने व्यवधान खुद हल करने होंगे। कोई भी मास्टर उन्हे हल नही* करेगा। तिथि भी नही, मां भी नही, बाबूजी भी नही।

बच्चे के रोने से उसकी आंखें खुल गयी। उसने मुड़कर देखा, भोर हो गयी थी। उसने साथ वाले बिस्तर पर देखा, बिस्तर वाली औरत उठकर बैठ गयी थी। उसने उचटती निगाह से उसे देखा, उस औरत ने भी पहचान वाली मुसकान से भरकर उसे निहारा। वह औरत मुसलमान परिवार की लग रही थी।

"आपके दूल्हे अभी तक नही आये ?"

वह सकुचा-सी गयी। रात मनीप ने ही पति की हैसियत से पेपर पर साइन किया था। डॉक्टर, नर्सें, पेशेंट—सब दोनों को पति-पत्नी ही समझ रहे थे। रात को जब उसे वापस बिस्तर पर लाकर डाला तो वह मनीप का हाथ पकड़े ज़ोर से बच्चों-सी रो पड़ी थी। मनीप उसके हाथ को सहलाता, दुलारता उसे सांत्वना देता रहा था।

"आपके कितने बच्चे है ?" उस औरत ने जर्मन की केटली को बढ़ाते हुए पूछा, "आपको चाय पीनी है ?"

"नहीं," उसने चाय के लिए मना कर दिया तथा सकोच से नीचे देखते हुए उसे बताया—"एक भी नहीं।"

"नयी-नयी शादी हुई है ? यह पहला बच्चा था ?"

"हां।"

"तभी..." उस औरत ने जैसे गहरा राज़ खोलते हुए कहा, "तुम इतना रो रही थी ?"

रात की असहनीय पीड़ा जो उसकी नस-नस में भरी थी, उभर आयी। आँखें डबडबा आयी। उसने बड़ी मुश्किल से अपने को संभाला और धीरे-से उठकर बिस्तर पर बैठ गयी। शरीर पर अभी भी रातवाले कपड़े ही थे, जिनमें से दवाइयों की बदबू आ रही थी। उफ़ ! एक रात में ही वह कितनी कमज़ोर पड़ गयी है। लग रहा है जैसे बरसों बाद बिस्तर से उठी है।

इस चुटकी भर समर्पण ने उसे क्या दिया ? उसकी ज़िन्दगी के दोनों तराज़ू के पल्ले खाली ही रहे।

अब यहां से लौटने के बाद वह मनीष के पास कभी नहीं लौटेगी ? देर से भटकता उसका मन जैसे डाल पर लौट आया था, जैसे पंछी भटककर वापस अपने घोंसले में आ जाता है। माना डाल सूखी है, पर उस पर घोंसला तो है, जिस पर थक-हारकर लौटा तो जा सकता है ?

उसने अपने थके हुए चेहरे को खिड़की की तरफ़ घुमाया। कई-कई दिनों की बीहड़ गर्मी के बाद बदली कदरायी थी। सूरज हट गया था... घटाएं उजाले को निगल गयीं और उमड़-घुमड़कर बरसात झरती रही। ●